Sali-Natha
Rasamanjari-vaidyaka

श्रीः ।

रसमञ्जरी-वैद्यक ।

पंडितवर शालिनाथविरचित ।

मुखियाजी रघुनाथजी श्रीकृष्णलाल
मथुरानिवासीकृत-

भाषाटीकासहित ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्, प्रेस-मुंबई.

श्रीः ।

रसमञ्जरी-वैद्यक ।

पंडितवर शालिनाथविरचित ।

मुखियाजी रघुनाथजी श्रीकृष्णलाल
मथुरानिवासीकृत-

भाषाटीकासहित ।

जिसमें

अनेक रस निकालनेकी क्रियाएँ स्पष्ट वर्णित हैं ।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने,

बंबई

स्वकीय "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम) यंत्रालयमें

छापकर प्रसिद्ध की ।

संवत १९६२, शके १८२७.

प्रस्तावना ।

प्रकट हो कि, आयुर्वेदीयविद्याके ज्ञाता धन्वन्तरिजीने समस्त प्राणियोंके रुजानाशनार्थ अनेक ग्रन्थ रचना किये हैं परन्तु उनमें बहुधा रसक्रिया सूक्ष्म रही. अत एव भिषग्वर वैद्यनाथात्मज पं० शालिनाथजीने अनेकआयुर्वेदीय ग्रंथोंका आशय लेकर दश अध्यायोंमें धात्वादिक तथा विषादिक शोधन मारण गुणागुणलक्षण और सर्वरसोंके बनाने तथा सर्वरोगों पर खानेकी विधि समेत इस ग्रन्थकी रचना की. परन्तु ग्रंथ केवल संस्कृतमें होनेसे सर्व सामान्यके लाभदायक न हुआ. अत एव हम कृष्णलालजीके द्वारा भाषानुवाद कराय स्वच्छतापूर्वक मुद्रित कर सज्जनोंके दृष्टिगोचर करतेहैं आशा है कि, सामान्यवैद्यभी इसके द्वारा प्रत्येक रस बनानेमें कुशल होजायँगे ॥

आपका कृपाभिलाषी–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना–मुम्बई.

श्रीः ।

अथ रसमञ्जर्य्या अनुक्रमणिका ।

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

ॐ

परमात्मने नमः ।

अथ रसमञ्जरी ।

भाषाटीकासमेता ।

गणपतिस्तुतिः ।

यद्गण्डमण्डलगलन्मधुवारिबिन्दु-
पानालसातिनिभृता ललितालिमाला ॥
सद्गुञ्जितेन विनिहन्ति नवेन्द्रनील-
शङ्कां स वो गणपतिः शिवमातनोतु ॥ १ ॥

अर्थ–जिसके कपोलस्थलसे चुचुहाती हुई मधुकी बूँदोंको धीरे २ पीते हुए अत्यन्त तृप्त सुन्दर भौंराओंकी पंक्ति अपने श्रेष्ठ गुंजारसे नई इंद्रनीलमणिकी शंकाको दूरकर रही है सो गणेश तुम्हारो कल्याणकरे ॥ १ ॥

श्रीशारदास्तुतिः ।

इन्दीवरीभवति यच्चरणारविन्द-
द्वन्द्वे पुरन्दरपुरस्सरदेवतानाम् ॥
वन्दारुतां कलयतां सुकिरीटकोटिः
श्रीशारदा भवतु सा भवपारदा वः ॥ २ ॥

अर्थ–जाके चरणारविन्दनपर शिर झुकातेभये इन्द्रादिक देवतानकी किरीट मुकुट कमलकी शोभाको प्राप्त होयँ ऐसी जो शारदा सो तुम्हैं संसारसागरसे उत्तीर्ण करनेवाली होय ॥२॥

ग्रंथारम्भः ।

श्रीवैद्यनाथतनयः सुनयः सुशीलः
श्रीशालिनाथ इति विश्रुतनामधेयः ॥
तेनावलोक्य विधिवद्विविधप्रबन्धा-
नारभ्यते सुकृतिना रसमञ्जरीयम् ॥ ३ ॥

अर्थ–सुंदरनीति और शीलवाले श्रीवैद्यनाथके पुत्र श्रीशालिनाथने अनेक प्रकारकी रसविधियोंको विधिवत् देखकर इस रसमंजरीके बनानेका आरम्भ कियाहै ॥ ३ ॥

सन्मधुव्रतवृन्दानां सततं चित्तहारिणी ॥
अनेकरसपूर्णेयं क्रियते रसमञ्जरी ॥ ४ ॥

अर्थ–सद्वैद्यरूप भौंराओंके समूहके निरन्तर चित्त हरनेवाली अनेक रसनसे भरीहुई यह "रसमंजरी" बनाई जाती है ॥ ४ ॥

पारदप्रकरणम् ।

हरति सकलरोगान्मूर्च्छितो यो नराणां
वितरति किल बद्धः खेचरत्वं जवेन ॥
सकलसुरमुनीन्द्रैर्वंदितं शम्भुबीजं
स जयति भवसिन्धोः पारदः पारदोऽयम् ॥ ५ ॥

अर्थ–मूर्च्छित किया पारा मनुष्योंके सब रोगोंका नाश करताहै और गोली बँधनेपर वेगसे आकाशमें चलनेकी शक्ति देताहै ऐसा जो यह पाराहै वह सम्पूर्ण देवता, मुनि और ऋषियोंसे पूजित और संसारसागरसे पार लगानेवाला है॥५॥

तेजो मृगाङ्कमौलेः सोढुं यन्नैव तेजसां पुञ्जैः ॥
अजरामरतां वितरति कल्पतरुं तं रसेश्वरं वन्दे ॥ ६ ॥

अर्थ–महादेवका वीर्य तेजोंके पुंजोंकरिके सहन करनेको शक्य नहीं है वह शिववीर्य अजरता और अमरताको देता है. उस कल्पवृक्षरूप पारदको नमस्कार करता हूं ॥ ६ ॥

योन वेत्ति (क्रिया) कृपाराशिं रसं हरिहरात्मकम् ॥
वृथा चिकित्सां कुरुते स वैद्यो हास्यतां व्रजेत् ॥ ७ ॥

अर्थ–जो वैद्य विष्णु और शिवके इस आत्मा रूप पारेके गुणोंको नहीं जानताहै उसका इलाज करना कराना वृथाहै और उसकी हंसीभी होतीहै ॥ ७ ॥

शुष्केन्धनमहाराशिं (यथा) यद्वद्दहति पावकः ।
(तथा धातुगतान्सूतो) तद्वद्दहति
सूतोऽयं रोगान्दोषत्रयोद्भवान् ॥ ८ ॥

अर्थ–जैसे सूखे ईंधनके बडे ढेरको अग्नि जलादेती है उसी तरह (धातुगत) कफ वात पित्तसे उत्पन्न रोगोंको पारद जलादेताहै ॥ ८ ॥

गुरुसेवां विना कर्मणो निष्फलत्वम् ।

गुरुसेवां विना कर्म यः कुर्यान्मूढचेतनः ॥
स याति निष्फलत्वं हि स्वप्नलब्धं यथा धनम् ॥ ९ ॥
विद्यां ग्रहीतुमिच्छन्ति चौर्यच्छद्मबलादिना ॥
न तेषां सिध्यते किंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥ १० ॥

अर्थ–जो मूढ़ बुद्धिवाले मनुष्य गुरुसेवाके विना रसादिक बनानेमें प्रवृत्त होतेहैं उनकी वह क्रिया स्वप्नमें प्राप्त हुए धनकी तरह नष्ट होजातीहै और जो चोरी छल और बलसे विद्याग्रहण करनेकी इच्छा करते हैं उनका द्रव्य व मंत्र व औषधादिक कुछ भी सिद्ध नहीं होताहै ॥ ९ ॥ १० ॥

गुरोर्लक्षणम् ।

मंत्रसिद्धो महावीरो निश्चलः शिववत्सलः ॥
देवीभक्तः सदा धीरो देवतायागतत्परः ॥ ११ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः कुशलो रसकर्मणि ॥
एतल्लक्षणसंयुक्तो रसविद्यागुरुर्भवेत् ॥ १२ ॥

अर्थ–नीचे लिखेहुए लक्षणोंसे युक्त मनुष्यको रसविद्याका गुरु समझना चाहिये. मंत्रकी सिद्धि होय, बलवान् होय, जितेन्द्रिय होय, शिव और देवीका भक्त होय, सुख दुःखमें सदा धीरज धरे, देवताओंके यज्ञमें तत्पर और सम्पूर्ण शास्त्रोंके सारांशको जाननेवाला रस बनानेमें निपुण होय॥ ११ ॥ १२॥

शिष्यलक्षणम् ।

शिष्यो निजगुरोर्भक्तः सत्यवक्ता दृढव्रतः ॥
निरालस्यः स्वधर्मज्ञो देव्याराधनतत्परः ॥ १३ ॥

अर्थ–अपने गुरुमें श्रद्धा करनेवाला, सत्यभाषी, विधिवत् नियम पालक, आलस्य रहित, अपने धर्मको जाननेवाला, देवीकी उपासनामें तत्पर इन लक्षणोंसे युक्त शिष्य होना चाहिये॥ १३॥

पारदनामानि ।

शिवबीजं सूतराजः पारदश्च रसेन्द्रकः ॥
एतानि रसनामानि तथान्यानि शिवे यथा ॥ १४ ॥

अर्थ–पारेको शिवबीज, सूतराज, रसेन्द्र, पारद कहते हैं और जो २ शिवके नामहैं वे बीजयुक्त पारेके नामहैं जैसे शम्भुबीज हरबीज इत्यादिक ॥ १४ ॥

पारदलक्षणम् ।

अन्तःसुनीलो बहिरुज्ज्वलो योमध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः ॥
शस्तोप्यधूम्रःपरिपाण्डुरश्च चित्रो नयोज्यो रसकर्मसिद्धौ १५

अर्थ-जो पारा भीतरसे स्वच्छ नील रंगका होय और बाहर चमकदार दुपहरके सूर्य समान प्रकाशित होय वह श्रेष्ठ है, और धुंधला चारोंओरसे पीला २ चित्र विचित्र हो वह रसादिक बनानेके योग्य नहीं ॥ १५ ॥

दोषमुक्तो यदा सूतस्तदा मृत्युरुजापहः ॥
साक्षादमृतमेवैष दोषयुक्तो रसो विषम् ॥ १६ ॥

अर्थ-जो पारा दोषरहित होताहै वह मृत्यु आदि रोगोंका नाश करनेवाला साक्षात् अमृतके समान गुणदायक होता है और दोष सहित पारा विष याने जहर के समान है अतएव शुद्ध कियाहुआ पाराही काममें लाना चाहिये ॥ १६ ॥

पारदे दोषाः ।

नागो वङ्गोऽग्निचाञ्चल्यमसह्यत्वं विषं गिरिः ॥
मलान्येते च विज्ञेया दोषाः पारदसंस्थिताः ॥ १७ ॥

अर्थ-सीसा, रांग, अग्नि, चपलता,असह्यत्व,विष,गिरिदोष और मल इतने दोष पारेमें होतेहैं इन दोषोंके रहनेसे पारा मनुष्योंको क्रमसे नीचे लिखेहुये विकार पैदा करताहै ॥ १७ ॥

जाड्यं कुष्ठं महादाहं वीर्यनाशं च मूर्च्छनाम् ॥
मृत्युं स्फोटं रोगपुञ्जं कुर्वन्त्येते क्रमान्नृणाम् ॥ १८ ॥

अर्थ-सीसेसे जडता, रांगसे कोढ, अग्निसे दाह, चपलतासे वीर्य नाश, असह्यत्वसे मूर्च्छा, विषसे मौत, गिरिदोषसे फोडा और मलसे रोगोंका समूह मनुष्योंको होजाताहै॥१८॥

अथ पारदशोधनविधिः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि पारदस्य च शोधनम् ॥
रसो ग्राह्यः सुनक्षत्रे पलानां शतमात्रकम् ॥ १९ ॥

अर्थ–अब यहांसे मैं पारदके शोधनेकी विधि कहताहूं कि अच्छे शुभ नक्षत्रमें१००पल अर्थात४००तोले पारा लावे ॥१९॥

पञ्चाशत्पञ्चविंशद्वा दशपञ्चैकमेव च ॥
पलादूनं न कर्तव्यं रससंस्कारमुत्तमम् ॥ २० ॥

अर्थ–१००पल न लावे तो ५० पल अथवा २५ पल अथवा दश पल अथवा पांच पल; परन्तु एक पलसे कम शोधनेके लिये यत्न न करे क्योंकि इसमें परिश्रम बहुत होताहै और शुद्ध होनेपर बहुत थोडा हाथ लगताहै ॥ २० ॥

पलत्रयं चित्रकसर्षपाणां कुमारिकन्याबृहतीकषायैः ॥
दिनत्रयं मर्दितसूतकस्तु विमुच्यते पञ्चमलादिदोषैः॥२१॥

अर्थ–तीन पल चीता और सरसों ले क्वारपाठा और छोटी कटेरीका कषाय करके तीन दिन खरल करनेसे पारेके पांच मलादिक दोष दूर होजाते हैं ॥ २१ ॥

इष्टकारजनीचूर्णैः षोडशांशं रसस्य च ॥
मर्दयेत्तं तथा खल्वे जम्बीरोत्थद्रवैर्दिनम् ॥ २२ ॥

अर्थ–पारेका सोलहवां भाग ईंट और हलदीका चूरा लेकर खरल करै फिर खरलमें डाल दिनभर नींबुके रसमें घोटै॥२२॥

कांजिकैः क्षालयेत्सूतं नागदोषं विमुञ्चति ॥
विशालां कोलचूर्णेन वंगदोषं विमुञ्चति ॥ २३ ॥

अर्थ–फिर कांजीसे धोनेपर पहिले कहा हुआ नागदोष अर्थात् सीसा दोष दूर होजाता है और इन्द्रायण और अंकोलके चूरसे घोटनेपर रांगका दोष दूर होजाता है ॥ २३ ॥

राजवृक्षो मलं हन्ति पावको हन्ति पावकम् ॥
चाञ्चल्यं कृष्णधत्तूरास्त्रिफला विषनाशिनी ॥ २४ ॥

अर्थ–अमलतास मलको दूर करता है चीतेकी छालका क्काथ अग्निदोषको मारता है काला धतूरा चपलता दोषको और त्रिफला विषदोषको दूर करती है ॥ २४ ॥

कटुत्रयं गिरिं हन्ति असह्यत्वं त्रिकंटकः ॥
प्रतिदोषं पलांशेन तत्र सूतं सकांजिकम् ॥ २५ ॥

अर्थ–त्रिकटु पर्वतके दोषको और गोखरू असह्यत्वको दूर करताहै प्रत्येक दोषके दूर करनेके लिये एक २ पल कांजी प्रत्येक पल पारेमें डालै ॥ २५ ॥

सुवस्त्रगालितं खल्वे सूतं क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ॥
उद्धृत्य चारनालेन मृद्भांडे क्षालयेत्सुधीः ॥ २६ ॥

अर्थ–फिर गाढे वस्त्रमें छानकर खरलकरे फिर मिट्टीके बर्तनमें कांजीसे धोवे ॥ २६ ॥

सर्वदोषविनिर्मुक्तः सर्वकंचुकवर्जितः ॥
जायते शुद्धसूतोऽयं योजयेद्रसकर्मसु ॥ २७ ॥

अर्थ–इस प्रकार पारा सब दोषों और सातों कांचलियोंसे अलग होजाता है और शुद्ध होनेपर सब प्रकारके रस बनानेमें काम आताहै ॥ २७ ॥

रसस्य दशमांशं तु गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत् ॥
जम्बीरोत्थद्रवैर्यामं पात्यं पातनयंत्रके ॥ २८ ॥

अर्थ–फिर पारेसे दशवां हिस्सा गं ़क डालकर नींबूके रसमें पहरभर खरलकर पातनयंत्रसे पाच्य उडायले ॥ २८ ॥

पुनर्मर्द्यं पुनः पात्यं सप्तवारं विशुद्धये ॥
युक्तं सर्वस्य सूतस्य तप्तखल्वे विमर्दनम् ॥ २९ ॥

अर्थ–इसीप्रकार सातबार बार २ खरलकरे और बार२पातनयन्त्रसे उडावै फिर सबकूं मिलायकर तप्तखरलमें मर्दन करे२९

१ पाच्यं पातालयंत्रके ।

अथ तप्तखल्वम् ।

अजाशकृत्तुषाग्निंतु भूगर्भे त्रितयं क्षिपेत् ॥
तस्योपरि स्थितं खल्वं तप्तखल्वमिदं स्मृतम् ॥ ३० ॥

अर्थ-बकरीकी मेंगनी और तुषकी आग पृथ्वीमें जलाकर उसके ऊपर खरल रखदे इसीको तप्तखल्व कहते हैं. इसमें नीचे लिखीहुई रीतियोंसे पारा घोटा जाताहै और शीघ्रही बहुत शुद्ध होजाता है ॥ ३० ॥

पारदशोधनस्यान्यः प्रकारः ।

कुमार्य्याश्च निशाचूर्णैर्दिनं सूतं विमर्दयेत् ॥
पातयेत्पातनायंत्रे सम्यक्छुद्धो भवेद्रसः ॥ ३१ ॥

अर्थ-घीगुवार और हलदीके चूरणसे पारेको दिनभर घोटे फिर पाताल यंत्रसे उडावे तो पारा शुद्ध होय ॥ ३१ ॥

श्रीखण्डदेवदारू च काकतुण्डीजयाद्रवैः ॥
कर्कोटीमुशलीकन्याद्रवं दत्वा विमर्दयेत् ॥ ३२ ॥
दिनैकं मर्दयेत्पश्चाच्छुद्धं च विनियोजयेत् ॥

अर्थ-चन्दन देवदारु कौआडोंडी हरड कर्कोटी मुसली और घीगुवारके रससे दिनभर मर्दन करनेसे पारा शुद्ध होजाताहै ॥ ३२ ॥

अन्यच्च ।

अथवा हिंगुलात्सूतं ग्राहयेत्स निगद्यते ॥ ३३ ॥
जम्बीरनिम्बुनीरेण मर्दितं हिंगुलं दिनम् ॥
ऊर्ध्वपातनयंत्रेण ग्राह्यः स्यान्निर्मलो रसः ॥ ३४ ॥
कंचुकैर्नागवंगाद्यैर्विमुक्तो रसकर्मणि ॥
विना कर्मकृतेनैव सूतोऽयं सर्वकार्यकृत् ॥ ३५ ॥

अर्थ-सिंगरफसे पारा निकालनेकी विधि कहतेहैं सिंगरफको जंभीरी या नींबूके रसमें दिनभर मर्दनकर डमरूयंत्रसे उडावे तौ निर्मल पारा निकले सो कांचली सीसा वंगआदि दोषोंसे रहित होकर विना और संस्कारोंके शुद्ध कियाहुआ ही सम्पूर्ण रसादिक बनानेमें अत्यन्त उपयोगी होताहै ॥३३॥३४॥३५॥

सर्वसिद्धमतमेतदीरितं सूतशुद्धिकरमद्भुतं परम् ॥
अल्पकर्मविधि भूरिसिद्धिदं देहलोहकरणे हि शस्यते ३६

अर्थ-मैंने यह शोधनविधि सब महात्माओंके मतानुसार कही इसमें थोडा परिश्रम और बहुतलाभ होताहै और शरीरको लोहवत् कडा करनेमें अत्यन्त उपयोगी है ॥ ३६ ॥

संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम् ॥
देहस्य नाशं विविधं च कुष्ठं कष्टं च रोगाञ्जनयेन्नराणाम् ३७॥

अर्थ-जो मनुष्य विना शोधे हुये पारेका सेवन करें हैं उनके अनेक व्याधि देहनाश अनेकप्रकारके कोढ कष्ट और भांति २ के रोग पैदा होजाते हैं ॥ ३७ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां रसशोधनप्रकरणकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि रसजारणमुत्तमम् ॥
अथाजीर्णमबीजं च सूतकं यस्तु घातयेत् ॥ १ ॥
ब्रह्महा स दुराचारी मम द्रोही महेश्वरि ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जारितं मारयेद्रसम् ॥ २ ॥

अर्थ-हे पार्वती ! जो चंचल और अबीजपारेको मारै है वह ब्रह्महत्यारा कुकर्म्मी और मेरा द्रोहीहै इससे सर्व उपायोंसे जीर्ण पारेको मारै ॥ १ ॥ २ ॥

अथ षड्गुणजारणम् ।

प्रक्षिप्य तोयं मृत्कुंडे तस्योपरि शरावकम् ॥
सचूर्णं मेखलायुक्तं स्थापयेत्तस्य चांतरे ॥ ३ ॥
रसं क्षिप्त्वा गंधकस्य रजस्तस्योपरि क्षिपेत् ॥
समभागंततो दद्याच्छरावेण पिधापयेत् ॥ ४ ॥
लघीयसीं भस्ममुद्रां ततः कुर्य्याद्भिषग्वरः ॥
आरण्योपलकैः सम्यक् चतुर्भिः पुटमाचरेत् ॥ ५ ॥
एवं पुनः पुनर्गंधं दत्त्वा दत्त्वा भिषग्वरः ॥
सम्यक् कुर्वीत सूतस्य देवि षड्गुणजारणम् ॥ ६ ॥

अर्थ-मिट्टीके कुंडमें पानी भरके ऊपर एक शराव रखदे और बीचमें गोलमेखलासी आड लगायकर शरावके भीतर पारा रखदे और उसके ऊपर गंधकका चूरा डालदे और फिर दूसरे शरावसे ढकदे और राखसे उसको लेपदे और फिर आरने उपलाओंकी आग नीचे लगायदे इसीप्रकार बारबार गंधक उसके ऊपर डालतारहे हे देवि! इसीप्रकार पारेका षड्गुण जारण होजाताहैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

इति षड्गुणजारणम् ।

शास्यो रसः स्यात्पटुशिग्रुतुत्थैः सराजिकैर्व्यो-
षणकैस्त्रिरात्रम् ॥ पिष्टस्ततः स्विन्नतनुः सुवर्ण-
मुख्यानयं खादति सर्वधातून् ॥ ७ ॥
अथवाविडयोगेन शिखिपित्तेन लेपितम् ॥
चरेत्सुवर्णं रसराट् तप्तखल्वे यथासुखम् ॥ ८ ॥
निर्दग्धशंखचूर्णं च रविक्षीरेण संप्लुतम् ॥

पुटितं शतशो देवि प्रशस्तं जारणं विदुः ॥ ९ ॥
स्वर्णाभ्रसर्वलोहानि यथेष्टानि च जारयेत् ॥
अनेन विधिना सूतं चतुःषष्ट्यंशकादिना ॥ १० ॥
द्वात्रिंशत्षोडशांशेन जारयेत्कनकं बुधः ॥

अर्थ–सेंधानोन सहँजनेके बीज तूतिया राई और सोंठ मिरच पीपल इन करके पारेको तीन दिन खरलकरे फिर स्वेद संस्कार करनेसे पारा सुवर्णादिक सब धातुओंको खाजाताहै ॥ दूसरी रीति ॥ नमक और मोरके पित्तसे लेपन करै और तप्तखल्वमें खरलकरे तो पारा सहजहीमें सोनेको खाजाताहै और जलाहुआ शंखका चूरा आकके दूधमें मिलाकर पुटदेनेसे पारेका उत्तम जारण होताहै इसीप्रकार सुव अभ्रक लोहा इन सबके जारणमें पारेका हिस्सा चौसठवां अथवा बत्तीसवां अथवा सोलहवां देनेसे सुवर्णको जलावे ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

इति सुवर्णजारणम् ।

अथ रसमारणम् ।

द्विपलं शुद्धसूतं च सूतार्द्धं शुद्धगंधकम् ॥ ११ ॥
कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं निरन्तरम् ॥
रुद्ध्वा तद्भूधरे यंत्रे दिनैकं मारयेत्पुटात् ॥ १२ ॥

अर्थ–शुद्ध किया हुआ पारा दोपल और पारेसे आधी शुद्ध गंधक दोनोंको घीगुवारके रसमें दिनभर निरन्तर मर्दन करे फिर भूधर यंत्रमें धरके एक दिनमें उडायले ॥ ११ ॥ १२ ॥

इति रसमारणम् ।

अथ रसभस्मविधिः ।

भुजंगवल्लीनीरेण मर्दितं पारदं दृढम् ॥
कर्कोटीकंदमृन्मूषासंपुटस्थं पुटे गजे ॥ १३ ॥
भस्म तद्योगवाहि स्यात्सर्वकर्मसु योजयेत् ॥

अर्थ-पानके रसमें पारेको खूब रगडे मिट्टीकी मूषामें कर्कोटीके कंदसे संपुट दे फिर गजपुटकी आग देनेसे यह भस्म योगवाही होती है फिर इसको हरएकयोगमें लगावे ॥ १३ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

श्वेतांकोलजटावारिमर्द्यः सूतो दिनत्रयम् ॥ १४ ॥
पुटितश्चांधमूषायां सूतो भस्मत्वमाप्नुयात् ॥
प्रत्यहं रक्तिकाः पञ्च भक्षयन्मधुसर्पिषा॥ १५॥
को वा तस्य गुणान्वक्तुं भुवि शक्नोति मानवः ॥

अर्थ-सफेद अंकोलकी जटानके पानीमें तीन दिनतक पारेका मर्द्दन करे फिर अंधमूषामें रखकर अग्नि जलानेसे पारा भस्म होय प्रतिदिन शहद और घीके संग पांच रत्ती खाय तो पृथ्वीपर कौनसा मनुष्य उसके गुणोंको कहनेका सामर्थ्य रखताहै ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ रससिन्दूरकरणमाह ।

पलमात्रं रसं शुद्धं तावन्मात्रं सुगंधकम् ॥ १६ ॥
विधिवत्कज्जलीं कृत्वा न्यग्रोधांकुरवारिभिः ॥
भावनात्रितयं दत्त्वा स्थालीमध्ये निधापयेत् ॥ १७ ॥
विरच्य कवचीयंत्रं वालुकाभिः प्रपूरयेत् ॥
दद्यात्तदनु मंदाग्निं भिषग्यामचतुष्टयम् ॥ १८ ॥

जायते रससिंदूरं तरुणारुणसन्निभम् ॥
अनुपानविशेषेण करोति विविधान्गुणान् ॥ १९ ॥

अर्थ-एकपल पारा शुद्ध और उतनीही गंधक बडकी जडके पानीसे विधिपूर्वक कजली करे तीन भावना देकर थालीमें रखदे फिर कांचकी कुप्पीमें भरकर वालूयंत्रमें चार पहरतक मंदी मंदी आग देता रहे तो दुपहरके सूर्यके समान प्रकाशित रससिंदूर होय और अनुपानसे सेवन करनेपर अनेक प्रकारके गुण करे ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

गंधकेन समः सूतो निर्गुंडीरसमर्दितः ॥
पाचितो वालुकायंत्रे रक्तं भस्म प्रजायते ॥ २० ॥

अर्थ--गंधकके समान पारा लेकर निर्गुंडीके रसमें रगडा करे फिर वालुकायंत्रमें रखकर अग्नि दे तो सुरख रंगकी भस्म होय२०

अन्यच्च ।

सूतार्द्धं गंधकं शुद्धं माक्षिकोद्भूतसत्त्वकम् ॥
गंधतुल्यं विमर्द्याथ दिनं निर्गुंडिकाद्रवैः ॥ २१ ॥
स्थापयेद्वालुकायंत्रे काचकुप्यां विपाचयेत् ॥
अंधमूषागतं वाथ वालुकायंत्रके दिनम् ॥ २२ ॥
पक्कं संजायते भस्म दाडिमीकुसुमोपमम् ॥

अर्थ--पारेसे आधी गंधक और गंधकके बराबर सोनामक्खी का सत्त्व लेकर तीनोंको निर्गुंडीके रसमें दिनभर रगडकर वालुयंत्रमें कांचकी कुप्पीमें भरकर आग लगावे अथवा अंध-मूषामें रखकर वालुयंत्रके भीतर दिनभर अग्नि देनेसे अनारकी कलीसी लाल भस्म होजाती है ॥ २१ ॥ २२ ॥

अन्यच्च ।

पृथक् समं समं कृत्वा पारदं गंधकं तथा ॥ २३ ॥
नवसारं धूमसारं स्फटिकीं याममात्रके ॥
निम्बुनीरेण संमर्द्य काचकुप्यां विपाचयेत् ॥ २४ ॥
मुखे पाषाणपटिकां दत्त्वा मुद्रां प्रलेपयेत् ॥
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैः पृथक् संशोष्य वेष्टयेत् ॥ २५ ॥
सच्छिद्रायां मृदः स्थाल्यां कूपिकां सन्निवेशयेत् ॥
पूरयेत्सिकतापूरैरागलं मतिमान्भिषक् ॥ २६ ॥
निवेश्य चुल्ल्यां दहनं मंदमध्यखरं क्रमात् ॥
प्रज्वाल्य द्वादशं यामं स्वांगशीतलमुद्धरेत् ॥ २७ ॥
स्फोटयित्वा पुनः स्थालीमूर्ध्वगं गंधकं त्यजेत् ॥
अधःस्थं रससिन्दूरं सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २८ ॥

अर्थ–बराबर बराबर गंधक और पारा ले नौसद्दर और धूमसार फिटकरीसे पहरभर मर्दनकर नींबूके रसमें घोटे फिर कांचकी कुप्पीमें भरे उसके मुखको कडी ईंटसे खाम्दे फिर साततह कपडमिट्टीकी चढावे फिर कुप्पीको गलेतक वाँलुसे भरेहुये बर्तनमें रख चूल्हेपर चढाय पहिले मंदी फिर मध्यम फिर बहुततेज आग बारहपहर जलावे ठंढे होनेपर सीसीको उतार तोडले ऊपर जो गंधक उड जाय उसे छोड दे और नीचे रससिंदूरको लेकर सब कामोंमें लगावे ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

गंधकं धूमसारं च शुद्धसूतं समं समम् ॥
यामैकं मर्दयेत्खल्वे काचकुप्यां विवेशयेत् ॥ २९ ॥

रुद्धा द्वादशयामं तु वालुकायंत्रगं पचेत् ॥
स्फोटयेत्स्वांगशीतं तमूर्ध्वलग्नं तु तं त्यज्येत् ॥३०॥
अधःस्थं मृतसूतं च सर्वयोगेषु योजयेत् ॥

अर्थ–गंधक धूमसार और शुद्धपारेको बराबर बराबर लेकर खरलमें पहर भरतक खरलकर कांचकी सीसीमें भर वालुका यंत्रमें बारह पहरतक आग जलावै ठंढे होनेपर शीशीको उतारकर फोडे ऊपर गईहुई गंधकको छोडदे नीचेके पारेको सब कामोंमें काम लावे ॥ २९ ॥ ३० ॥

अन्यच्च ।

भागौ रसस्य त्रय एव भागा गंधस्य भागं पवनाशनस्य ॥
संमर्द्य गाढं सकलं सुभांडे तां कज्जलीं काचकृतेविदध्यात्३१
संवेष्ट्य मृत्कर्पटकैः खटांतां ।
मुखे सचूर्णां खटिकां च कृत्वा ॥
क्रमाग्निना त्रीणि दिनानि पक्का ।
तां वालुकायंत्रगतां ततः स्यात् ॥ ३२ ॥
बंधूकपुष्पारुणमीशजस्य भस्म प्रयोज्यं सकलामयेषु ॥
निजानुपानैर्मरणं जरां च निहन्ति वल्लक्रमसेवनेन ॥ ३३ ॥

अर्थ–दोभाग पारा तीनभाग गंधक और एकभाग सीसा इनकी खूब कजलीकर कांचकीशीशीमें भरदे फिर खडियामिट्टीसे कपडमिट्टीकर मुंहको बन्दकर तीनदिनतक मंदी मध्यम और तेज अग्निसे वालुकायंत्रमें पकावे दुपहरियाके फूलके समान पारेकी भस्मको सबरोगोंमें काम लावे अलग २ अनुपानसे दोरत्तीभस्मका सेवन किया जाय तो इससे मौत और बुढापा पास नहीं आसकते ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

पक्वमूषागतं सूतं गंधकं चाधरोत्तरम् ॥
तुल्यं संचर्णितं कृत्वा काममाचीद्रवं पुनः ॥ ३४ ॥
द्वाभ्यां चतुर्गुणं देयं द्रवं मूषां निरुध्य च ॥
पाचयेद्गडुकायंत्रे क्रमवृद्धाग्निना दिनम् ॥ ३५ ॥
आरक्तं जायते भस्म सर्वयोगेषु योजयेत् ॥

अर्थ-मूसामें निकलाहुआ शुद्धपारा उतनीही गंधक ऊपर-नीचे रखकर फिर दोनोंसे चौगुना मकोयका अर्क भरदे फिर गडुकायंत्रमें क्रमसे बढी अग्नि मंदी मध्यम बहुत तेज दिनभर लगावे तो सुरखभस्म होजाय सबयोगोंमें फिर काम लावे ॥ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

अन्यच्च ।

अश्वगंधादिवर्गेण रसं स्वेद्यं प्रयत्नतः ॥ ३६ ॥
रसतुल्यं गंधकं दत्त्वा मर्दयेत्कुशलो भिषक् ॥
पाचयेद्रससिंदूरं जायतेऽरुणसंनिभम् ॥ ३७ ॥
श्रेष्ठं सर्वरसानां हि पुष्टिकामबलप्रदम् ॥ ३८ ॥
इदमेवायुषो वृद्धिं कर्तुं नान्यदलं भवेत् ॥
विनापि स्वर्णराजेन मुनिभिः परिकीर्तितम् ॥ ३९ ॥

अर्थ-असगंधादि वर्गसे प्रथम पारेको स्वेद्यकर उसके समान गंधक डाल रिगडाकरने फिर नीचे आगदेनेसे सूर्यके समान प्रकाशित रससिन्दूर बनकर तयार होजाता है यह सब रसोंमें श्रेष्ठ पुष्टि, काम और बलदायक है उमरबढानेवाली कोई दूसरी वस्तु स्वर्णराजके विनाभी इसके सिवाय कोई नहीं है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अन्यच्च ।

टंकणं मधु लाक्षाऽथ ऊर्णा गुंजायुतो रसः ॥
मर्दयेद्भृगजैर्द्रावैर्दिनैकं वा धमेत्पुनः ॥ ४० ॥
ध्मातो भस्मत्वमायाति शुद्धः कर्पूरसन्निभः ॥

अर्थ–सुहागा शहद लाख ऊन और एक रत्ती पारा भांगरेके अर्कमें दिनभर खरलकर धौंकनीसे फूकनेपर कर्पूरके समान भस्म होजातीहै ॥ ४० ॥

अथ रसकर्पूर ।

खटीष्टचगैरिका वल्मीमृत्तिका सैंधवं समम् ॥ ४१ ॥
भागद्वयमितं गंधं रसं भागद्वयं स्मृतम् ॥
हंडिकायां विनिक्षिप्य पार्श्वे पार्श्वे च खर्पटान् ॥ ४२ ॥
दग्ध्वाऽथ हंडिकां दत्वा द्विरष्टप्रहरं पचेत् ॥
मृतसूतं तु गृह्णीयाच्छुद्धकर्पूरसन्निभम् ॥ ४३ ॥

अर्थ–खडिया ईंट गेरू बांबीकी मिट्टी सेंधानमक बराबर बराबर ले इनसे दूनी गंधक और दूना पारा लेकर खरल करे फिर हंडियामें भर चारोंओर खीपडा लगाय आगपै धर सोलह पहर आग जलावे फिर शुद्ध कपूरके आकारके मरेहुये पारेको लेलेवे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अन्यच्च ।

पिष्टं पांशुपटुप्रगाढममलं वज्राम्बुनानेकशः
सूतं धातुयुतं खटीकवलितं तं संपुटे रोधयेत् ॥
अन्तःस्थं लवणस्य तस्य च तले प्रज्वाल्य वह्निं हठा-
द्भस्म ग्राह्यमथेन्दुकुंदलवलं भस्मोपरिस्थं शनैः ॥४४॥
तद्वल्लद्वितयं लवंगसहितं प्रातः प्रभुक्तं नृणा-

मूर्च्छां रेचयति द्वियाममसकृत्पेयं जलं शीतलम् ॥
एतद्धन्ति च वत्सरावधि विषं षाण्मासिकं मासिकं
शैलोत्थं गरलं मृगेन्द्रकुटिलोद्भूतं च तात्कालिकम् ४५

अर्थ–खारीनमक और थूहरके दूधमें कईवार पारेको खरल कर संपुटमें धर खडियासे कपड मिट्टी कर आगपै धरे नीचे और ऊपर नमक धरे चन्द्रासी सफेद भस्म धीरे धीरे उतारले यही रसकपूर है जो मनुष्य प्रातःकाल लौंगके संग इसको १रत्ती खाय तो दो पहरमें दस्त होय. ऊपरसे ठंडा जल पीवे यह एक बरसके छः महीनाके महीनाके शिलासे निकले विषको और सिंहके नखसे उत्पन्न और तत्कालके विषको मारै है॥४४॥४५॥

रसमूर्च्छनमाह ।

रोचनादवचाहिंगुलशुनैर्मर्दयेद्रसम् ॥
नष्टदिष्टं तु तद्गोलं हिंगुना वेष्टयेद्बहिः ॥ ४६ ॥
पचेल्लवणयंत्रस्थं दिनैकं चंडवह्निना ॥
ऊर्ध्वलग्नं समादाय दृढं वस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ ४७ ॥
ऊर्ध्वाधो गंधकं तुल्यं दत्वा सौम्यानले पचेत् ॥
जीर्णे गंधे पुनर्देयं षड्भिर्वारैः समं समम् ॥ ४८ ॥
षड्गुणे गंधके जीर्णे मूर्च्छितो रोगहा भवेत् ॥

अर्थ–चौराई, वच, हींग और लहसनसे पारेको खरलकर गोला बनायकर बाहरकी ओर हींगसे लपेटकर लवणयंत्रमें रखकर नीचे प्रचंड आग जलाय दिनभर पकावे फिर काचकी कुप्पीमें जो ऊपर लगजाय उसे ले कपडासे मजबूत लपेटे. ऊपर और नीचे गंधक रख मंदीमंदी आग जलावे फिर छः बार बराबर बराबर गंधक देतारहै इसी प्रकार करते रहनेसे षड्गुण जीर्ण गंधक मूर्च्छित होता है, वह सब रोगोंको नाश करनेवाला होता है।४६।४७।४८॥

अथान्यः प्रकारः ।

लोहपात्रेऽथवा ताम्रे पलैकं शुद्धगंधकम् ॥ ४९ ॥
मृद्वग्निना द्रुते तस्मिञ्छुद्धं सूतपलत्रयम् ॥
क्षिप्त्वाथ चालयेत्किंचिल्लोहदर्व्या पुनः पुनः ॥ ५० ॥
गोमयं कदलीपत्रं तस्योपरि च ढालयेत् ॥
इत्येवं गंधबद्धं च सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ५१ ॥

अर्थ–लोहे अथवा तांबेके पात्रमें एकपल शुद्ध गंधक धीरी २ आगपर गरम करके तीन पल पारा डालकर लोहेके पलटासे चलावै फिर केलेके पत्तोंपर गोमय लगाय कर वापै ढालै तौ गंधक बंध जाय फिर वह सब रोगोंपर काममें लावै।४९।५०।५१।

गुणमाह ।

मारितो देहसिद्ध्यर्थं मूर्च्छितो व्याधिनाशने ॥
रसभस्म क्वचिद्रोगे देहार्थे मूर्च्छितं क्वचित् ॥
बद्धो द्वाभ्यां प्रयुंजीत शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ५२ ॥

अर्थ–मरा हुआ गंधक देहकी सिद्धिमें काम आताहै और मूर्छित रोगोंका नाश करताहै और पारेकी भस्म रोगमें और मूर्च्छित देहके लिये, परन्तु बद्धशास्त्रकी रीतिसे देहके लिये और रोगोंके लिये काम आता है ॥ ५२ ॥

बद्धपारदस्य लक्षणम् ।

अक्षयी च लघुर्द्रावी तेजस्वी निर्मलो गुरुः ॥ ५३ ॥
स्फुटनं पुनरावृत्तिर्बद्धसूतस्य लक्षणम् ॥
कज्जलाभो यदा सूतो विहाय घनचापलम् ॥ ५४ ॥
दृश्यतेऽसौ तदा ज्ञेयो मूर्च्छितः सुतरां बुधैः ॥
आर्द्रत्वं च घनत्वं च चापल्यं गुरुतेजसम् ॥ ५५ ॥

यस्यैतानि न दृश्यंते तं विद्यान्मृतसूतकम् ॥
रसस्तु पादांशसुवर्णजीर्णः पिष्टीकृतो गंधकयोगतश्च ५६
तुल्यांशगंधैःपुटितं क्रमेण निर्बीजनामाखिलरोगहन्ता॥
बीजीकृतैरभ्रकसत्त्वहेमतारार्ककान्तैःसहसाधितोयः५७
पुनस्ततः षड्गुणगंधचूर्णैःसबीजबद्धोऽप्यधिकप्रभावः ॥
रसवीर्यविपाकेषु विद्यात्सूतं सुधामयम् ॥
सेवितोऽसौ सदा देहे रोगनाशाय कल्पते ॥ ५८ ॥

अर्थ–बद्ध पारेके लक्षण ये हैं क्षीण न होय लघुद्रावी होय चमकीला होय निर्मल होय भारी होय और बिखरनेपर फिर इकट्ठा होजाय और जब पारा कठोरता और चपलताको छोडकर काजलसा होजाय तब उसे बुद्धिमान् लोग अच्छी तरहसे मारा हुआ जानैं जिस पारेमें गीलापन सघनता चपलता भीतरका चमचमाह दिखलाई न दे तब उसको मृत पारद जानना चाहिये तथा जिसमें पारेसे चौथाई सुवर्ण जीर्ण हुआहो और जो गंधकके योगसे पीसा गयाहो और तुल्य भाग करके क्रमसे पुट दियागया हो उसको सब रोगोंका नाश करनेवाला निर्बीजनामा रस कहते हैं–और अभ्रकसत्त्व सुवर्ण चांदी और लोहके संयोगसे पिष्टीकरके जारित और षड्गुण गंधक करके हत हो उस अधिक प्रभाववाले पारेको सबीज बद्ध कहते हैं ऐसे अमृततुल्य पारेका सेवन करनेसे रस और वीर्यका विपाक होता है और देहके सब रोग नष्ट होते हैं ॥५३॥५४॥५५॥५६॥५७॥५८॥

अथ रससेवने पथ्यम् ।

कूष्मांडं कर्कटीं चैव कालिंगं कारवेल्लकम् ॥ ५९ ॥
कुसुंभिकं च कर्कोटीं कदलीं काकमाचिकाम् ॥
प्रकाराष्टकमेतद्धि वर्जयेद्रसभक्षकः ॥ ६० ॥

हितं मुद्गांबुदुग्धाज्यं शाल्यन्नं च विशेषतः ॥
शाकं पुनर्नवायास्तु मेघनादं च चिल्लिकाम् ॥ ६१ ॥
सैन्धवं नागरं मुस्तं पद्मं मूलानि भक्षयेत् ॥
अभ्यंगं मैथुनं स्नानं यथेष्टं च सुखांबुना ॥ ६२ ॥
रूपयौवनसम्पन्नां सानुकुलां प्रियां भजेत् ॥
बुद्धिः प्रज्ञा बलं कांतिः प्रभा चैवं वयस्तथा ॥ ६३ ॥
वर्द्धन्ते सर्व एवैते रससेवाविधौ नृणाम् ॥
यस्य रोगस्य यो योगस्तेनैव सह योजयेत् ॥
रसेन्द्रो हरते रोगान्नरकुंजरवाजिनाम् ॥ ६४ ॥

अर्थ–नीचे लिखे हुये आठ प्रकार पारदके सेवनमें त्यागने चाहिये–कोहला अथवा काशीफल वा पेठा १ ककड़ी २ तरबूज व कलींदा ३ करेला ४ कुसुंभ ५ कर्कोटी ६ केला ७ और मकोय ८ नीचे लिखी हुई वस्तु पारेके सेवनमें पथ्य हैं मूंगपानी दूध घी (कोई २ बकरीका दूध कहते हैं) और विशेषकर चावल सागमें साठी चौलाई मेथी सैंधानोंन सोंठ मोथा पद्मकी जड खाना चाहिये. उबटना मैथुन सुख पूर्वक यथेष्ट जलसे स्नान और रूपवती नवीन स्त्री पारा सेवन करनेवालेको हितकारी है. पारेका सेवन करना बुद्धि बल रूप कान्ति और अवस्थाको बढ़ाता है जिस रोगको जो योग हो उसको उसके साथ देनेसे पारा मनुष्य हाथी और घोडोंके रोगोंकोभी दूर करता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां रसस्य जारण-
मारणकथनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथोपरसानाह ।

गंधकं वज्रवैक्रान्तं गगनं तालकं शिलाम् ॥
खर्परं शिखि तुत्थं च विमला हेममाक्षिकम् ॥ १ ॥

कासीसं कांतपाषाणं वराटांजनहिंगुलम् ॥
कंकुष्टं शंखभूनागं टंकणं तु शिलाजतु ॥
एते उपरसाः प्रोक्ताः शोध्याद्रव्याश्च मारयेत् ॥ २ ॥

अर्थ–गंधक हीरा वैक्रान्त अभ्रक हरताल मनसिल खपरिया नीलाथोथा विमलीमक्खी सुवर्णमक्खी हीराकसीस कांतलोह कौडी सुरमा सिंगरफ मुरदाशंग गिडोया शंख सुहागा और शिलाजीत ये इतने उपरस हैं इनको शोधना और मारना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अथ गंधकोत्पत्तिः ।

तत्रादौ गंधकोत्पत्तिं शोधनं त्वथ कथ्यते ॥ ३ ॥
श्वेतद्वीपे पुरा देव्याः क्रीडन्त्याः प्रसृतं रजः ॥
क्षीरार्णवे तु स्नातायाा दुकूलं रजसान्वितम् ॥ ४ ॥
धौतं यत्सलिले तस्मिन् गंधवद्गंधकं स्मृतम् ॥
चतुर्धा गंधकः प्रोक्तो रक्तपीतसितासितैः ॥ ५ ॥
रक्तो हेमक्रियासूक्तः पीतश्चैव रसायने ॥
व्रणादिलेपने श्वेतः श्रेष्ठः कृष्णस्तु दुर्लभः ॥ ६ ॥
अशुद्धगंधः कुरुतेऽतिकुष्ठं तापं भ्रमं पित्तरुजं करोति ॥
रूपं सुखं वीर्यबलं निहन्ति तस्मात्सुशुद्धं विनियोजनीयम् ७

अर्थ–प्रथम गंधककी उत्पत्ति तथा शोधनविधि कहते हैं पहिले श्रीपार्वतीजीको श्वेतद्वीपमें क्रीडा करते करते रजोदर्शन हुआ उन्ही रुधिराप्लावित वस्त्रोंसे समुद्रमें स्नान किया और जलमें वस्त्र धोनेसे यह गंधक उत्पन्न हुआ. गंधक चार प्रकारका है लाल पीला सफेद और काला लाल गंधक सुवर्णके जारण मारणमें काम आता है, पीला गंधक रसायनमें और सफेद गंधक घावोंपर लेप करनेमें उपयोगी है और काला गंधक कठिनतासे मिलता है. विना शोधा हुआ गंधक कोढ़ ताप

भ्रम और पित्तरोगोंको करता है. रूप सुख वीर्य और पुरुषार्थका नाश करता है इसलिये शोधा हुआ गंधकही काममें लगाना चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ गंधकशोधनम्।

साज्यभांडे पयः क्षिप्त्वा मुखं वस्त्रेण बंधयेत् ॥
तत्पृष्ठे गंधकं क्षिप्त्वा शरावेणावरोधयेत् ॥ ८ ॥
भांडं निक्षिप्य भूम्यां तदूर्ध्वं देयं पुटं लघु ॥
ततः क्षीरेण गंधं च शुद्धं योगेषु योजयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ–घृतके चिकने बर्तनमें दूध भरकर उसका मुख कपडेसे बांध दे फिर उसपर गंधकका चूरा करके रखदे और ऊपरसे सरवा ढक हलकासा पुट लगाय बर्तनको पृथ्वीपर रखदे नीचे आग लगानेसे जो गंधक पिघलकर कपडेमें छनती हुई नीचे जायगी वह सब कामोंमें उपयोगी शुद्ध होजायगी ॥ ८ ॥ ९ ॥

अन्यच्च।

गंधकं शोधयेद्दुग्धे दोलायंत्रेण तत्त्ववित् ॥
तेन शुद्धो भवत्येष धातूनां प्राणमूर्च्छकः ॥ १० ॥

अर्थ–बुद्धिमान दोलायंत्रद्वारा गंधकका दूधमें शोधन करे ऐसा करनेसे वह शुद्ध गंधक धातुओंके मारनेमें अत्यन्त उपयोगी होगी ॥ १० ॥

अन्यच्च।

घृतयुक्तमयोदर्व्यां गंधं वह्नौ प्रगालयेत् ॥
एकीभूतं ततो गंधं दुग्धमध्ये परिक्षिपेत् ॥ ११ ॥
तेन शुद्धो भवेद्गंधः सर्वयोगेषु योजयेत् ॥
शोधितो रसराजः स्याज्जरामृत्युरुजापहः ॥
अग्निसंदीपनं श्रेष्ठं वीर्यवृद्धिं करोति च ॥ १२ ॥

अर्थ–लोहेकी कढैयामें घी भरके गंधक डालदे नीचे अग्नि जलायकर गंधककूं गलायले जब घुलकर एकसी होजाय तब दूधमें डालदे ऐसा करनेसे सब योगनमें काम आनेलायक गंधक शुद्ध होजाय. शोधी हुई गंधक बुढापे मृत्यु और सब रोगोंको नाश करे, जठराग्निको तेज करे और वीर्यको बढावे है ॥ ११ ॥ १२ ॥

इति गंधकशोधनम् ।

अथ गंधकतैलम् ।

अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यं तु सप्तधा ॥ १३ ॥
गंधकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं लिपेत्तु तत् ॥
तद्वर्तिर्ज्वलिता वंशैर्धृता धार्या त्वधोमुखी ॥ १४ ॥
तैलं पतत्यधो भांडे ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ॥
अग्निसंदीपनं श्रेष्ठं वीर्यवृद्धिं करोति च ॥ १५ ॥

अर्थ–आक और थूहरके दूधसे कपड़ेको सात सातवार भिगोवे और सुखाले फिर गंधकको मक्खन घीमें पीसकर कपडेसे लगायले. फिर उस कपडेकी बत्ती कर जलादे, जली हुई बत्तीको बांसकी पोरीमें लगायकर नीचेको करले, ऐसा करनेसे तैल नीचे बर्तनमें गिरेगा और सब काममें काम आवेगा, जठराग्नि और वीर्यको बढावेगा ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥

इति गंधकतैलम् ।

अथ हीरकजातयः ।

श्वेतपीतारक्तकृष्णा द्विजाद्या वज्रजातयः ॥
पुंस्त्रीनपुंसकं चेति लक्षणेन तु लक्षयेत् ॥ १६ ॥
वृत्ताः फलकसंपूर्णास्तेजोवंतो बृहत्तराः ॥
पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दुविवर्जिताः ॥ १७ ॥

रेखाबिन्दुसमायुक्ताः षट्कोणास्ताः स्त्रियः स्मृताः ॥
त्रिकोणाः पत्रवद्दीर्घा विज्ञेयास्ते नपुंसकाः ॥ १८ ॥
सर्वेषां पुरुषाः श्रेष्ठा वेधका रसबंधकाः ॥
स्त्रीवज्रदेहसिद्ध्यर्थं क्रामणं स्यान्नपुंसकम् ॥ १९ ॥
विप्रो रसायने प्रोक्तः क्षत्रियो रोगनाशने ॥
वादादौ वैश्यजातीयो वयःस्तंभे तुरीयकः ॥ २० ॥
स्त्री तु स्त्रियै प्रदातव्या क्लीबे क्लीबं तथैव च ॥
सर्वेषां सर्वदा योज्याः पुरुषा बलवत्तराः ॥ २१ ॥

अर्थ–हीरा अपने पृथक् २ रंगोंसे चार वर्णका है जैसे श्वेत रंगका हीरा ब्राह्मणवर्ण, पीले रंगका क्षत्रिय वर्ण, लाल रंगका वैश्य वर्ण और काले रंगका शूद्रवर्ण है फिर नीचे लिखे हुए लक्षणोंसे इसको पुरुष स्त्री और नपुंसक जानना चाहिये अर्थात् गोल गाढ़दार पूरा (टूटा हुआ न होय) तेजवान् चमकदार बडे रेखा और बिन्दुसे रहित हीरेको पुरुष कहते हैं और जिसमें रेखा और बिन्दुओंसे युक्त छः कोणवाले हीरेको स्त्रीसंज्ञक जानना और तीन कोणवाला पत्तेके समान लंबा हीरा नपुंसक होता है परन्तु इन सबमें पुरुषसंज्ञक श्रेष्ठ होते हैं और यही पारेका वेधक है और बंधक है. स्त्रीसंज्ञक हीरा देहकी सिद्धिमें और नपुंसक क्रामणमें काम आताहै ब्राह्मणवर्ण रसायन क्रिया, में, क्षत्रिय रोगके नाश करनेमें, देहकी सिद्धिमें वैश्यवर्ण और अवस्थाके बढ़नेमें शूद्र वर्ण उपयोगी है. स्त्रीसंज्ञक हीरा स्त्रियोंको और नपुंसक नपुंसकको देना चाहिये क्योंकि स्त्रीसंज्ञक हीरा रूपको वढाता है और नपुंसक वीर्यको बढाता है और पुरुषजातिका सबके लिये श्रेष्ठ है यह बलकारक और सब औषधियोंमें डालनेको उपयोगी है ।१६।१७।१८।१९।२०।२१।

अथ वज्रशोधनम् ।

पांडुरोगं पार्श्वपीडां किलासं दाहसंततिम् ॥
रोगानीकं गुरुत्वं च धत्ते वज्रमशोधितम् ॥ २२ ॥
व्याघ्रीकंदगतं वज्रं दोलायंत्रे विपाचितम् ॥
सप्ताहं कौद्रवक्काथे कौलत्थे विमलं भवेत् ॥ २३ ॥

अर्थ-अशुद्ध हीरा इतने रोग पैदा करता है पीलिया पँसलीमें दरद किलास (सीफ) दाह जलन व भारीपन. इस लिये इसको प्रथम इन विधियोंसे शोधले पहिली विधि, हीरेको व्याघ्रीकंदमें रखकर दोलायंत्रद्वारा कोदों वा कुलथीके काढ़ेमें सात दिनतक पचानेसे हीरा निर्मल और शुद्ध होजाताहै॥२२॥२३॥

अन्यच्च ।

व्याघ्रीकंदगतं वज्रं मृदा लिप्तं पुटे पचेत् ॥
अहोरात्रात्समुद्धृत्य हयमूत्रेण सेचयेत् ॥ २४ ॥
वज्रक्षीरेण वा सिंचेत्कुलिशं विमलं भवेत् ॥

अर्थ-दूसरी विधि-पूर्वोक्तविधिसे हीरेको पचाकर व्याघ्री-कंदमें रखकर ऊपरसे कपडमिट्टीकर आगमें धरदे एक दिन रात पीछे निकालकर उसपर घोडेका मूत या थूहरका दूध डालदे तो हीरा शुद्ध होजायगा ॥ २४ ॥

अथ वज्रमारणम् ।

त्रिवर्षारूढकार्पासमूलमादाय पेषयेत् ॥ २५ ॥
त्रिवर्षनागवल्ल्याश्च द्रावेण तं प्रपेषयेत् ॥
तद्गोलके क्षिपेद्वज्रं रुद्धा गजपुटे पचेत् ॥ २६ ॥
एवं सप्तपुटं कृत्वा कुलिशं म्रियते ध्रुवम् ॥

अर्थ-तीनवर्षकी कपासकी जडको पीसकर तीनवर्षकी नागवेलके रससे लुगदी बनावे उसमें हीरेको रख कपडामिट्टी-

कर गजपुटकी आग दे ॥ २५ ॥ २६ ॥ ऐसे सातवार फूंकनेसे हीरेकी भस्म होजाती है ॥

अथान्यः प्रकारः ।

कांस्यपात्रे तु भेकस्य मूत्रे वज्रं सुभावयेत् ॥ २७ ॥
त्रिः सप्तकृत्वः संतप्तं वज्रमेवं मृतं भवेत् ॥

अर्थ–काँसीके बर्तनमें मेंडकका मूत भरदे फिर हीरेको तपातपाकर इक्कीसवार बुझानेसे भस्म होजाती है ॥ २७ ॥

अथ वज्रभस्म ।

त्रिः सप्तकृत्वः संतप्तं खरमूत्रेण सेचयेत् ॥ २८ ॥
मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा तद्गोले कुलिशं क्षिपेत् ॥
प्रध्मातं वाजिमूत्रेण सिक्तं पूर्वक्रमेण वै ॥ २९ ॥
भस्मीभवति तद्भुक्तं वज्रवत्कुरुते तनुम् ॥
आयुष्यं सौख्यजनकं बलदं रूपदं तथा ॥ ३० ॥
रोगघ्नं मृत्युहरणं वज्रभस्म भवत्यलम् ॥

अर्थ–हीरेको इक्कीसबार तपातपाकर गधेके पेशाबमें बुझावै फिर खटमल और हरतालको पीस लुगदी बनाकर हीरेको उसमें रखदे फिर खूब प्रचंड अग्नि लगाकर पहिली रीतिसे घोडेके मूत्रमें बुझावै तौ भस्म होजाय यह भस्म शरीरको वज्रवत् कठोर कर देती है आयुको बढानेवाली सुख बल और रूपको देनेवाली रोगोंको और मृत्युको जीतनेवाली यह हीरेकी भस्म अत्यन्त गुणदायक है ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

इति वज्रभस्म ।

अथ वैक्रांतमारणम् ।

अष्टास्रिरष्टफलकः षट्कोणो मसृणो गुरुः ॥ ३१ ॥
शुद्धमिश्रितवर्णैश्च युक्तो वैक्रान्त उच्यते ॥

श्वेतो रक्तश्च पीतश्च नीलपारावतच्छविः ॥ ३२ ॥
श्यामलः कृष्णवर्णश्च कर्बुरश्चाष्टधा हि सः ॥

आयुःप्रदः सकलबंधकरोऽतिवृष्यः
प्रज्ञाप्रदः सकलरोगसमूलहारी ॥
दीप्ताग्निकृत्पविसमानगुणस्तरस्वी
वैक्रान्तकः खलु वपुर्बललोहकारी ॥ ३३ ॥

वैक्रान्तं वज्रवच्छुद्धं ध्मातं तं हयमूत्रके ॥
हितं तद्भस्म संयोज्यं वज्रस्थाने विचक्षणैः ॥ ३४ ॥

अर्थ–जो हीरा अष्टाधार आठ फलकवाला छः कोणयुत चमकदार भारी शुद्ध मिले हुये रंगोंका होता है उसे वैक्रान्त कहते हैं श्वेत लाल पीला नीला कबूतरके रंगका श्यामल काले रंगका चित्र विचित्र अर्थात् कबरा इन आठ रंगोंका वैक्रान्त होताहै यह आयु बढानेवाला सफल बंधक बलप्रदायक बुद्धिको बढ़ानेवाला सब रोगोंका जडसे नाश कर्त्ता जठराग्निको तेज करनेवाला स्फूर्ति और हिम्मत बढ़ानेवाला सब शरीरको लोहके समान करडा करनेवाला है यह वैक्रान्त हीरेकी तरह शोधा जाता है अर्थात् इसको तपातपाकर घोडेके मूत्रमें भिगोनेसे भस्म होजाती है बुद्धिमान् इस हीराको भस्मके स्थानमें योगकर सक्ते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इति वैक्रांतमारणम् ।

अथाभ्रकलक्षणम् ।

पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रमभ्रं चतुर्विधम् ॥
ध्मातं वह्नौ दलचयं पिनाकं विसृजत्यलम् ॥ ३५ ॥
फूत्कारं नागवत्कुर्याद्दुर्दरं भेकशब्दवत् ॥
चतुर्थं च वरं ज्ञेयं न चाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ॥ ३६ ॥

तस्माद्वज्राभ्रकं ग्राह्यं व्याधिवार्धक्यमृत्युजित् ॥
अशुद्धाभ्रं निहन्त्यायुर्वर्द्धयेन्मारुतं कफम् ॥ ३७ ॥
अहतं छेदयेद्गात्रं मंदाग्निकृमिवर्द्धकम् ॥
अतः शुद्धाभ्रकं ग्राह्यं मंदाग्निकृमिनाशनम् ॥ ३८ ॥

अर्थ–काले अभ्रकके चार भेदहैं पिनाक, दर्दुर, नाग और वज्र, अग्निमें डालनेसे पिनाक अभ्रकके दल अथवा वरक अलग २ होजाते हैं यह कुष्ठकारक है. नाग अभ्रक अग्निमें डालनेसे सांपकीसी फुंकार देता है यह भगंदर रोग पैदा करता है और दर्दुर अभ्रक अग्निमें डालनेसे मेंडककासा शब्द करता है यह मृत्युकारकहै अब चौथा वज्राभ्रक अग्निमें डालनेसे वैसाका वैसाही रहता है अर्थात् विकारको प्राप्त नहीं होता इसलिये वह सबमें श्रेष्ठ है इसी हेतु व्याधि बुढापा और मृत्युको जीतनेवाला वज्राभ्रकको ग्रहण करै. अशुद्ध अभ्रक आयुको क्षीणकर देता है और वात और कफको बढाता है और विना मराहुआ शरीरको फोड देता है अर्थात् सब देहमें फोडे निकल आते हैं मंदाग्नि और कृमिको बढानेवाला है अवएव उपरोक्त रोगोंके नाशके लिये शुद्ध किये हुए अभ्रकका प्रयोग करै॥३५॥३६॥ ३७ ॥ ३८॥

धान्याभ्रककरणविधिः ।

पादांशशालिसंयुक्तमभ्रं बद्ध्वाऽथ कंबले ॥
त्रिरात्रं स्थापयेन्नीरे तत्क्लिन्नं मर्दयेद्दृढम् ॥ ३९ ॥
कंबलाद्गलितं श्लक्ष्णं वालुकारहितं च यत् ॥
तद्धान्याभ्रमिति प्रोक्तं सद्भिर्देहस्य सिद्धये ॥ ४० ॥

अर्थ–अभ्रक और उसके चतुर्थांश धानके तुष दोनोंको कंबलमें बांधदे फिर तीन दिनतक पानीमें भिगोवे जब अच्छीतरह भीगजाय तब गीलेहीको उसी पानीमें खूब मर्दन

करै कि, कंबलसे उसका सब कूडा कर्कट निकलकर स्वच्छ हो जाय इसीको धान्याभ्रक कहते हैं यह देहकी सिद्धिमें उपयोगी है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथाभ्रकशोधनम् ।

अथवा बदरीक्वाथे ध्मातमभ्रं विनिक्षिपेत् ॥
मर्दितं पाणिना शुष्कं धान्याभ्रादतिरिच्यते ॥ ४१ ॥

अर्थ–दूसरी विधि–अभ्रकको तपातपाकर बेरीके काढेमें वारंवार बुझावे फिर सुखाकर हाथसे खूब मर्दन करनेपर अभ्रक धान्याभ्रकसेभी उत्तम होजाता है ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

धमेद्वज्राभ्रकं वह्नौ ततः क्षीरेण सेचयेत् ॥
भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा मेघनादाम्लयोर्द्रवैः ॥ ४२ ॥
भावयेदष्टयामं तद्धान्याभ्रं कारयेत्सुधीः ॥

अर्थ–वज्राभ्रकको तपातपाकर वारंवार गौके दूधमें बुझावे फिर उसके दल (वरक) अलग करके चौलाई और खटाईके द्रावमें आठपहरतक भावनादे तो धान्याभ्रक शुद्ध होजाय ४२

इत्यभ्रकशोधनम् ।

अथाभ्रकमारणम् ।

धान्याभ्रकस्य भागैकं द्वौ भागौ टंकणस्य च ॥ ४३ ॥
पिष्ट्वा तदंधमूषायां रुद्ध्वा तीव्राग्निना पचेत् ॥
स्वभावशीतलं चूर्णं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ–धान्याभ्रक एक भाग और सुहागा दो भाग दोनोंको पीस अंधमूषामें रख मुँह बंदकर तेज आगमें धरदे जब ठंढा होजाय तब उसको निकाल चूर्णकर औषधियोंके योगमें काम लावे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

अन्यच्च ।

धान्याभ्रकं दृढं मर्द्यमर्कक्षीरे दिनावधि ॥
वेष्टयेद्धालुपत्रैश्च चक्राकारं तु कारयेत् ॥ ४५ ॥
कुंजराख्ये पुटे पाच्यं सप्तवारं पुनः पुनः ॥
ततो वटजटाक्काथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥ ४६ ॥
म्रियते नात्र संदेहो सर्वरोगेषु योजयेत् ॥

अर्थ–दूसरी विधि धान्याभ्रकको आकके दूधमें एक दिन खरलकर टिकिया बनाय आकके पत्तोंमें लपेटकर गजपुटकी आगमें पकावे इसीप्रकार सातवार आकके दूधमें खरलकर गजपुटकी आगदे फिर बडकी जटाओंके क्काथमें तीन भावना देनेसे निस्सन्देह अभ्रक मरजाता है और सब काममें उपयोगके लायक होजाता है ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अन्यच्च ।

धान्याभ्रकं समादाय मुस्तक्काथैः पुटत्रये ॥ ४७ ॥
तद्वत्पुनर्नवाक्षीरैः कासमर्दरसैस्तथा ॥
नागवल्लीरसैर्धुक्तं सूर्यक्षीरैः पृथक्पृथक् ॥ ४८ ॥
दिने दिने मर्दयित्वा क्काथैर्वटजटोद्भवैः ॥
दत्त्वा पुटत्रयं पश्चात्त्रिपुटं मुशलीजलैः ॥ ४९ ॥
त्रिगोक्षुरकषायेण त्रिः पुटेद्वानरीरसैः ॥
मोचाकंदरसैः पाच्यं त्रिवारं कोकिलाक्षकैः ॥ ५० ॥
रसैः पुटेत्ततो धेनुक्षीरादेकं पुटं मुहुः ॥
दध्ना घृतेन मधुना स्वच्छया सितया तथा ॥ ५१ ॥
एकमेकं पुटं दद्यादभ्रस्यैवं मृतिर्भवेत् ॥
सर्वरोगहरं व्योम जायते योगवाहकम् ॥ ५२ ॥

कामिनीमददर्पघ्नं शस्तं पुंस्त्वोपवाहिनाम् ॥
वृष्यमायुष्करं शुक्रवृद्धिसंतानकारकम् ॥ ५३ ॥

अर्थ–धान्याभ्रकको लाकर मोथके काथमें तीन पुटदे फिर इसीतरह सांठीके रसमें फिर कसोंदीके रसमें फिर पानके रसमें फिर आकके दूधमें अलग अलग एक एक दिन मर्दन कर बडकी जटाओंके क्वाथमें,तीन दिन पुट देकर फिर तीन पुट मुसलीके जलमें फिर इसी तरह गोखरूके क्वाथमें कोचके रसमें कदलीकंदके रसमें और तालमखानेके तीन तीन पुटदे फिर एक पुट गौके दूधमें देकर फिर दही मक्खन शहद और सफेद मिश्रीका एक एक पुट देनेसे अभ्रक निश्चय मरजाता है सब रोगोंका नाश करनेवाला यह अभ्रक योगवाह होजाता है.स्त्रियोंके मदको विध्वंस करनेवाला नपुंसकताको हरनेवाला बलवीर्य और आयुष्यको बढानेवाला संतानके हेतु हितकारी होता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अन्यच्च !

दुग्धत्रयं कुमार्यम्बु गंगापत्रं नृमूत्रकम् ॥
वटांकुरमजारक्तमेभिरभ्रं सुमर्दितम् ॥ ५४ ॥
शतधा पुटितं भस्म जायते पद्मरागवत् ॥
निश्चन्द्रकं भवेद्व्योम शुद्धदेहो रसायनम् ॥ ५५ ॥
निश्चन्द्रमारितं व्योम रूपं वीर्यं दृढां तनुम् ॥
कुरुते नाशयेन्मृत्युं जरारोगकदंबकम् ॥ ५६ ॥

अर्थ–बड थूहर और आकका दूध, घीकुवारका रस,नागरमोथा, मनुष्यका मूत्र बडकी जटाओंका रस बकरीका रुधिर इन सबमें अभ्रकको अच्छीतरह घोट सौ पुट देनेसे पुखराज मणिकीसी भस्म होजाती है निश्चंद्र (जिसमें कोई सफेद अभ्रककी चमक न रहे) मरा हुवा अभ्रक देहकी शुद्धि और

रसायनमें उपयोगी होता है रूप वीर्यको देनेवाला शरीरको पुष्ट करता है मृत्यु बुढ़ापा और सब रोगोंका नाश करता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

इत्यभ्रकमारणम् ।

अथ हरतालशोधनमारणम् ।

अशुद्धं तालमायुघ्नं कफमारुतमेहकृत् ॥
वांतिस्फोटांगसंकोचं कुरुते तेन शोधयेत् ॥ ५७ ॥
शुद्धः स्यात्तालकः स्विन्नः कूष्मांडसलिले ततः ॥
चूर्णोदके पृथक्तैले भस्मीभूतो न दोषकृत् ॥ ५८ ॥
तालको हरते रोगान्कुष्ठमृत्युरुजादिकान् ॥
संशुद्धः कांतिवीर्यं च कुरुते ह्यायुवर्द्धनम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-विना शोधा हुआ हरताल आयुको क्षीण करने वाला कफ वात प्रमेहको करने वाला और वमन हाडफूटन अंगसंकोच करनेवाला है इसलिये हरतालको शोध लेवे, पेठेके भीतर हरतालकी पोटली रखकर पचानेसे हरताल शुद्ध होजाता है. चूनेके पानी वा तैलमें अलग अलग दोला-यंत्रद्वारा औटानेसे शुद्ध होजाता है. भस्म हुआ हरताल दोष नहीं करता है शुद्ध हरताल कुष्ठ मृत्यु आदि रोगोंका नाश करताहै और कांति वीर्य व आयुको बढाताहै ॥५७॥५८॥५९॥

इति हरतालशोधनमारणम् ।

पलमेकं शुद्धतालं कौमारीरसमर्दितम् ॥
शरावसंपुटे क्षिप्त्वा यामान्द्वादशकं पचेत् ॥ ६० ॥
स्वांगशीतं समादाय तालकं तु मृतं भवेत् ॥
गलत्कुष्ठं हरेच्चैव तालकं च न संशयः ॥ ६१ ॥

अर्थ–एक गल शुद्ध हरताल लेकर घीकुवारके रसमें मर्दनकर शरावसंपुटमें बन्धकर बारह पहरकी आगदे ठंढा होनेपर उतार लेनेसे हरताल मरजाता है मराहुआ हरताल निस्सन्देह गलत्कुष्ठको दूर करताहै ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति हरितालमारणम्।

अथ मनःशिलाशोधनम्।

अगस्तिपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम् ॥
शृंगवेररसैर्वापि विशुद्धचति मनःशिला ॥ ६२ ॥
कटुः स्निग्धा शिला तिक्ता कफघ्नी लेखनी परा ॥
भूतावेशामयं हन्ति कासश्वासहरा शुभा ॥ ६३ ॥

अर्थ–मैनशिलको अगस्तके पत्तोंके रसकी अथवा अदरखके रसकी सात भावना देवे तौ शुद्ध होजाय. मैनशिल चरपरी है, चिकनी है, कडवी है कफको नाश करती है, लेखनी है भूतबाधा आमय कास और श्वासको मारती है [मारणविधि] बंदाल, आक, बड, थूहर और हंसपदी इन सबके दूधमें घोट घोट कर अग्निदेनेसे मैनशिल मरजाती है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

इति मनःशिलाशोधनमारणम्।

अथ खर्परशुद्धिः।

नृमूत्रैः खरमूत्रैश्च सप्ताहं रसकं पचेत् ॥
दोलायंत्रेण संसोध्य ततः कार्य्येषु योजयेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ–खपरियाको लेकर मनुष्य वा गधेके पेशाबमें सात दिनतक भावना देकर दोलायंत्रसे शुद्धकरना चाहिये तब सब कामोंमें योग करे ॥ ६४ ॥

अथ तुत्थशुद्धिः।

ओतोर्विष्ठासमं तुत्थं सक्षौद्रं टंकणाद्धिपक्र ॥
त्रिविधं पुटितं शुद्धं वांतिभ्रान्तिविवर्जितम् ॥ ६५ ॥

तुत्थकं कटु सक्षारं कषायं विषदं लघु ॥
लेखनं भेदि चक्षुष्यं कंडूकृमिविषापहम् ॥ ६६ ॥

अर्थ-बिल्लीकी विष्ठाके समान नीलाथोथा ले उसमें शहद और सुहागा डालकर खरल करले फिर शरावसंपुटमें रख फूंक दे इसीप्रकार तीनवार करनेसे नीलाथोथा शुद्ध होकर वमन और भ्रान्तिसे रहित होजाता है नीलाथोथा तीखा-खारी-कसेला-विषद-हलका-लेखन-भेदन-नेत्रोंको हितकारक, और खाज,कीडे तथा विषको दूर करनेवालाहै॥६५॥६६॥

इति तुत्थशुद्धिः ।

अथ विमलाशुद्धिः ।

जंबीरस्य रसे स्विन्ना मेषशृंगीरसेऽथवा ॥
रंभातोयेन वा पाच्यं घस्रं विमलशुद्धये ॥ ६७ ॥

अर्थ-जंभीरी अथवा मेंढासींगी अथवा केलाके रसमें दिनभर विमलाको पचानेसे शुद्ध होजाती है ॥ ६७ ॥

इति विमलाशुद्धिः ।

अथ माक्षिकशोधनम् ।

सिंधूद्भवस्य भागैकं त्रिभागं माक्षिकस्य च ॥
कृत्वा तदायसे पात्रे लोहदर्व्याथ चालयेत् ॥ ६८ ॥
सिंदूराभं भवेद्यावत्तावन्मृद्वग्निना पचेत् ॥
सभद्रं माक्षिकं विद्यात्सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ६९ ॥

अर्थ-एक भाग सेंधानमक और तीन भाग सोनामक्खीको ले घोटकर लोहेकी कढाईमें चढाय लोहेका दंडा वा पलटेसे चलाता रहै जबतक उसका रूप सिंदूरकासा न होय तबतक नीचे मंदी मंदी आग देता रहे यही उत्तम सोनामक्खीका भस्म है इसका सब ओषधियोंमें प्रयोग करे ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

अन्यच्च ।

माक्षिकस्य चतुर्थांशं दत्त्वा गंधं विमर्दयेत् ॥
ऊरुबूकस्य तैलेन ततः कार्या सुचक्रिका ॥ ७० ॥
शरावसंपुटे कृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ॥
सिंदूराभं भवेद्भस्म माक्षिकस्य न संशयः ॥ ७१ ॥
माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शःक्षयकुष्ठनुत् ॥
कफपित्तहरं बल्यं योगवाहि रसायनम् ॥ ७२ ॥

अर्थ–सोनामक्खीका चौथा हिस्सा गंधक ले दोनोंको खरल करै फिर अंडीका तेल डालकर टिकिया बनाले तब शरावसंपुटमें रख कपडमिट्टी कर गजपुटकी आगमें फूंकदे ऐसा करनेसे सोनामक्खीका सिंदूरके समान लाल भस्म होजायगा. सोनामक्खी–कडुई है, मधुर है, प्रमेह, बवासीर, क्षयी और कोढको दूर करै, कफ पित्तको हरै, बलकारक है और अन्य औषधियोंके योगमें उपयोगी है ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

इति माक्षिकशोधनम् ।

अथ कासीसशुद्धिः ।

सकृद्भृंगांबुना स्विन्नं कासीसं निर्मलं भवेत् ॥
कासीसं शीतलं स्निग्धं स्विन्नं नेत्ररुजापहम् ॥ ७३ ॥
पित्तापस्मारशमनं रसवद्गुणकारकम् ॥

अर्थ–हीराकसीस एक दिन भांगरेके रसमें पचानेसे शुद्ध होजाता है यह ठंढा, चिकना, तर, नेत्ररोगोंको दूर करनेवाला पित्त और मृगीका नाश करनेवाला, पारेके समान गुणकारक है ॥ ७३ ॥

इति कासीसशुद्धिः ।

अथ कांतपाषाणशुद्धिः ।

लवणानि तथा क्षारौ सोभांजनरसे क्षिपेत् ॥ ७४ ॥
अम्लवर्गयुते चादौ दिनमर्द्धं विभावयेत् ॥
तद्द्वैर्दोलिकायंत्रे दिवसं पाचयेत्सुधीः ॥ ७५ ॥
कांतपाषाणशुद्धौ तु रसकर्म समाचरेत् ॥

अर्थ-नमक तथा क्षारको सहँजनेके रसमें डालकर खटाई उसमें डालदे फिर आधे दिनतक कांतपाषाणको उसमें डालदे फिर खटाई द्वारा दोलायंत्रसे इसको दिनभर पचावै तौ कांतपाषाण शुद्ध होजाय फिर रसकर्ममें इसका योग करै ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

इति कान्तपाषाणशुद्धिः ।

अथ वराटिकाशुद्धिः ।

पीताभा ग्रंथिलाः पृष्ठे दीर्घवृत्ता वराटिकाः ॥ ७६ ॥
सार्द्धनिष्कभराः श्रेष्ठा निष्कभाराश्च मध्यमाः ॥
पादोननिष्कभाराश्च कनिष्ठाः परिकीर्तिताः ॥ ७७ ॥
रसवैद्यैर्विनिर्दिष्टास्ताश्चराचरसंज्ञकाः ॥
वराटा कांजिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयात् ॥७८॥
परिणामादिशूलघ्नी ग्रहिणी क्षयनाशिनी ॥
कटूष्णा दीपनी वृष्या नेत्र्या वातकफापहा ॥ ७९ ॥
रसेन्द्रजारणे प्रोक्ता विडद्रव्येषु शस्यते ॥

अर्थ-पीली ऊपरको गांठदार लंबी गोल और तोलमें छः मासेकी कौडीको रसवैद्योंने श्रेष्ठ कहा है और चारमासेकी मध्यम और तीन मासेकी कनिष्ठ कही गई है कौडीके दो भेद हैं, चर और अचर. कौडियां कांजीमें औटानेसे पहरभ-

रमें शुद्ध होजाती हैं. कौडी परिणामादि शूल संग्रहणी और क्षयीका नाश करनेवाली हैं. तीखी, गरम, दीपन, बलकारक,नेत्रोंको हितकारक वात और कफको नाश करनेवाली पारेके जारणमें उपयोगी और दस्तोंकी बीमारीको हितकारक हैं ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

इति वराटिकाशुद्धिः ।

अथ दरदशुद्धिः ।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् ॥ ८० ॥
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥
तिक्तोष्णं हिंगुलं दिव्यं रसगंधकसंभवम् ॥ ८१ ॥
मेहकुष्ठहरं रुच्यं बल्यं मेधाग्निदीपनम् ॥

अर्थ–हिंगलूको भेडके दूध और अम्लवर्गकी सातसात भावना देनेसे वह निश्चय शुद्ध होजाता है इसके गुण ये हैं पारे और गंधकसे निकाला हुआ हिंगलू कटु है, गरम है, दिव्य है,प्रमेह और कोढहर्ता रुचि और बलकारक है मंदाग्निको दीपन करनेवाला है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

इति दरदशुद्धिः ।

अथ शिलाजतुशुद्धिः ।

गोदुग्धत्रिफलाभृंगद्रवैः पिष्टं शिलाजतु ॥ ८२ ॥
दिनैकं लोहजे पात्रे शुद्धिमायात्यसंशयम् ॥
शिलाजतु भवेत्तिक्तं कटूष्णं च रसायनम् ॥ ८३ ॥
क्षयशोषोदरार्शांसि हन्ति बस्तिरुजो जयेत् ॥

अर्थ–गौके दूध अथवा त्रिफलाके रस अथवा भांगरेके रसमें शिलाजीतको घोलकर दिनभर लोहेके पात्रमें धर रहने देनेसे निस्सन्देह शुद्ध होजाता है इसके गुण,ये हैं कि कटु है,तिक्त है ग-

रम है, रसायन है, क्षय शोष उदरविकार और बवासीरका नाश करनेवाला है और पेड़ूके सब रोगोंको दूर करता है॥८२॥८३॥

इति शिलाजतुशुद्धिः ।

अथोपरसशोधनम् ।

सौवीरं टंकणं शंखं कंकुष्ठं गैरिकं तथा ॥ ८४ ॥
एते वराटवच्छोध्या भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥

अर्थ-सौवीरांजन, सुहागा, शंख, मुरदासंग और गेरू, कौडी की रीतिसे शोधनेपर शुद्धि होजातीहै. अर्थात् सौवीरांजन त्रिफला अथवा भांगरेके रसमें औटाने से शुद्ध होजाता है. सुहागेको जंभीरीके रसकी एक दिनरात भावना देनेसे शुद्ध होजाताहै अथवा गोबरमें रखनेसे भी कच्चा सुहागा वमन और भ्रान्ति करता है इसलिये उसको आगपर रखकर फुला लेना आवश्यक है. शंख अम्लवर्ग अथवा कांजीमें औटानेसे शुद्ध होनेपर संग्रहणी दस्त और आंखके फूलेको दूर करता है मुरदासंग सोंठके जलमें तीनवार धोनेसे शुद्ध होजाता है गेरूको गौके दूधमें खरल करने से अथवा घीमें औटानेसे शुद्ध हो जाताहै विना शुद्ध किया हुआभी प्रयोग किया जाताहै, वह कुछ नुकसान नहीं पहुंचाता ॥ ८४ ॥

इत्युपरसशोधनम् ।

अथ भूनागसत्त्वम् ।

सद्यो भूनागमादाय चारयेच्छिखिनं बुधः ॥
अथवा कुक्कुटं वीरं कृत्वा मन्दिरमाश्रितम् ॥ ८५ ॥
मलं मूत्रं गृहीत्वा च संत्यज्य प्रथमांशकम् ॥
आलोड्य क्षीरमध्वाज्यैर्धमेत्सत्त्वार्थमादरात् ॥ ८६ ॥
मुञ्चन्ति ताम्रवत्सत्त्वं तन्मुद्राजलपानतः ॥
नश्यन्ति जंगमविषाण्यशेषाणि न संशयः ॥ ८७ ॥

अर्थ-ताजी केचुए (गिंडोये) लाकर किसी मोर अथवा मुर्गेको पेट भरकर खवादे और उसको हुँस्यारीसे मकानके भीतर वा पिंजरेमें रक्खै और उसकी बींट वा मूत्रको इकट्ठा करले परन्तु उसके पहिले अंशको छोडदे उस मल मूत्रको दूध शहद घीमें मिलायकर सत्त्वके हेतु बंकनालसे धोंकनेपर तांबे॰ कासा सत्त्व निकलता है उसकी अंगूठी बनाकर पहरनेसे अथवा उसका धुआ हुआ जल पीनेसे सब जंगम विष दूर होजाते हैं नीलाथोथाका सत्त्व गिंडोयेका तांबा और सुवर्ण बराबर लेकर अंगूठी बनावै ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

इति भूनागसत्त्वम्।

अथ वैक्रान्तसत्त्वम्।

वैक्रान्तं वज्रकंदं च पेषयेद्द्रववारिणा ॥ ८८ ॥
माहिषं नवनीतं च सक्षौद्रं पिंडितं ततः ॥
शोषयित्वा धमेत्सत्त्वमिन्द्रगोपसमं भवेत् ॥ ८९ ॥

अर्थ-वैक्रान्त और थूहरकी जड़को दूधमें घोटकर भैंसका घी और शहद मिलाकर गोला बनावे फिर सुखाकर उसको प्रचण्ड आगसे धोंके तो बीरबहूटीके समान लाल सत्त्व होय॥८८॥८९॥

इति वैक्रान्तसत्त्वम्।

अथाभ्रकसत्त्वम्।

भावितं चूर्णितं त्वभ्रं दिनैकं कांजिकेन च ॥
रम्भासूरणजैर्नीरैर्मूलकोत्थैश्च मेलयेत् ॥ ९० ॥
तुर्यांशं टंकणेनेदं क्षुद्रमत्स्यैः समं पुनः ॥
महिषीमलसंमिश्रं विधायास्याथ गोलकम् ॥ ९१ ॥
खराग्निना धमेद्गाढं सत्त्वं मुंचति कान्तिमत् ॥
सत्त्वसेवी वयःस्तम्भं कृतशुद्धिर्लभेत्सुधीः ॥ ९२ ॥

अर्थ—अभ्रककी भस्मको कांजीमें दिनभर भावना देकर फिर केलाकी जड और जमीकन्दके रसकी भावना देकर इससे चौथाई सुहागा और छोटी छोटी मछली मिलाय भैंसके गोबरके संग इसका गोला बनावे फिर तेज आगसे इसको धमावे तो चमकदार सत्त्व निकले जो मनुष्य शुद्ध किये हुए इस सत्त्वका सेवन करता है उसकी आयुष्य बड़ी होती है ॥९०॥९१॥९२ ॥

इत्यभ्रकसत्त्वम् ।

अथाभ्रकद्रावणम् ।

अगस्तिपुष्पनिर्यासमर्दितं सूरणोदरे ॥
गोष्ठभूस्थं नमोभासं जायते जलसन्निभम् ॥ ९३ ॥

अर्थ—अगस्तके फूलके रसमें अभ्रकको मर्दनकर जमीकन्दके भीतर गोला बनाकर भरदे फिर गोशालामें उसको डालदे और महीनेभर पीछे निकाले तो अभ्रक जलके समान पतली होजाती है ॥ ९३ ॥

इत्यभ्रकद्रावणम् ।

अथ सर्वसत्त्वनिपातविधिः ।

गुडं पुरस्तथा लाक्षा पिण्याकं टंकणं तथा ॥
ऊर्णा सर्जरसं चैव क्षुद्रमीनसमन्वितम् ॥ ९४ ॥
एतत्सर्वं तु संचूर्णं छागीदुग्धेन पिंडिकाम् ॥
कृत्वा ध्माता खरांगारैः सर्वसत्त्वानि पातयेत् ॥ ९५ ॥
पाषाणमृत्तिकादीनि सर्वलोहगतानि च ॥
अन्यानि यान्यसाध्यानि व्योमसत्त्वस्य का कथा॥९६॥
यत्रोपरसभागोस्ति रसे तत्सत्त्वयोजनम् ॥
कर्तव्यं तद्गुणाधिक्यं रसज्ञत्वं यदीच्छासि ॥ ९७ ॥

अर्थ–गुड, गुग्गुलु, लाख, खल, सुहागा, ऊन, राल और छोटी मछली इन सबको पीसकर बकरीके दूधमें गोला बांध सुखाकर बंकनालसे धोंकनेपर सत्त्व निकल आता है. उपरोक्त वस्तुओंके रंग जिसका सत्त्व निकालना होय उसकोभी मिलादे. ऐसा करनेपर पत्थर मिट्टी और लोहगत धातु तथा अन्यान्य जिनका सत्त्व निकालना बडा कठिन है उनकाभी सत्त्व निकल आता है. अभ्रकका सत्त्व निकालना तो कुछ बडी बातही नहीं है. जहां कहीं किसी औषधिमें कोई उपरसका भाग लिखा हो वहां पारेमें उस उपरसका सत्त्व डालनेसे उसके गुणोंको बहुत बढा देताहै ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

इति सत्त्वपातनम्।

अथ मणिशोधनम्।

शुद्ध्यत्यम्लेन माणिक्यं जयंत्या मौक्तिकं तथा ॥
विद्रुमं क्षारवर्गेण ताक्ष्यं गोदुग्धतस्तथा ॥ ९८ ॥
पुष्परागं च संधानैः कुलत्थक्काथसंयुतैः ॥
तंदुलीयजलैर्वज्रं नीलं नीलीरसेन च ॥ ९९ ॥
रोचनाभिश्च गोमेदं वैडूर्यं त्रिफलाजलैः ॥

अर्थ–नीचे लिखेहुए रत्न दोलायंत्रद्वारा शुद्ध होजाते हैं अम्लवर्गसे माणिक अरनीके रससे मोती, क्षारवर्गसे मूंगा और गौके दूधसे पन्ना, सेंधेनोन और कुलथीके क्वाथमें पुखराज, चौलाईके रससे हीरा, नीलके रससे नीलम, गोमेद गोरोचनके जलमें त्रिफलाके जलसे वैडूर्य शुद्ध होता है ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

इति मणिशोधनम्।

अथ मणिमारणम् ।

लकुचद्रावसंपिष्टैः शिलागंधकतालकैः ॥ १०० ॥
वज्रं विनाऽन्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु ॥
मुक्ताविद्रुमवज्रेन्द्रवैदूर्यस्फटिकादिकम् ॥ १०१ ॥
मणिरत्नं खरं शीतं कषायं स्वादु लेखनम् ॥
चक्षुष्यं धारणात्तं तु पापालक्ष्मीविषापहम् ॥ १०२ ॥

अर्थ–मैनशिल, गंधक और हरितालको बडहरके रसमें पीसकर आठ २ पुट देनेसे सर्व रत्न भस्म होजाते हैं, हीराको छोडकर मोती, मूंगा, हीरा, वैदूर्य, स्फटिक, मणि और रत्न दस्तावर हैं, शीतल हैं, कसेला हैं, मिष्ट हैं,लेखन हैं, नेत्रोंको हितकारक हैं और पहरनेसे पाप और अलक्ष्मी और विषको दूर करते हैं ॥ १०० ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

इति मणिमारणम् ।

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्य्यामुपरसशोधनमारणकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ विषलक्षणानि ।

अष्टादशविधं ज्ञेयं कन्दजं परिकीर्तितम् ॥
कालकूटं मयूराख्यं बिन्दुकं सक्तुकं तथा ॥ १ ॥
वालुकं वत्सनाभं च शंखनाभं सुमंगलम् ॥
शृंगी मर्कटकं मुस्तं कर्दमं पुष्करं शिखी ॥ २ ॥
हारिद्रं हरितं चक्रं विषं हालाहलाह्वयम् ॥

अर्थ–कंदजविष १८ प्रकारका है (यह कन्दरूप प्रगट हुआ है विषोंमें उत्तम है) कालकूट १ मयूर २ बिन्दु ३ सक्तुक ४

Jaikishandas Mykitaby Contractor

वालुक ९ वत्सनाभ ६ शंखनाभ ७ सुमंगल ८ शृंगी ९ मर्कट १० मुस्त ११ कर्दम १२ पुष्कर १३ शिखी १४ हारिद्र १५ हरित १६ चक्र १७ और हालाहल १८ ॥ १ ॥ २ ॥

घनं रूक्षं च कठिनं भिन्नांजनसमप्रभम् ॥ ३ ॥
कन्दाकारं समाख्यातं कालकूटं महाविषम् ॥
मयूराभं मयूराख्यं बिन्दुवद्बिन्दुकः स्मृतः ॥ ४ ॥
चित्रमुत्पलकन्दाभं शक्तुकं शक्तुवद्भवेत् ॥
वालुकं वालुकाकारं वत्सनाभं तु पांडुरम् ॥ ५ ॥
शंखनाभं शंखवर्णं शुभ्रवर्णं सुमंगलम् ॥
घनं गुरु च निबिडं शृंगाकारं तु शृंगिकम् ॥ ६ ॥
मर्कटं कपिवर्णाभं मुस्ताकारं तु मुस्तकम् ॥
कर्दमं कर्दमाकारं सितपीतं च कर्दमम् ॥ ७ ॥
पुष्करं पुष्कराकारं शिखि शिखिशिखाप्रभम् ॥
हारिद्रकं हरिद्राभं हरितं हरितं स्मृतम् ॥ ८ ॥
चक्राकारं भवेच्चक्रं नीलवर्णं हलाहलम् ॥
ब्राह्मणः पांडुरस्तत्र क्षत्रियो रक्तवर्णकः ॥ ९ ॥
वैश्यः पीतप्रभः शूद्रः कृष्णाभो निन्दितः स्मृतः ॥
ब्राह्मणो दीयते रोगे क्षत्रियो विषभक्षणे ॥ १० ॥
वैश्यो व्याधिषु सर्वेषु सर्पदष्टाय शूद्रकम् ॥

अर्थ–घना रूखा कडा अंजनके समान नीला कन्दवत् आकारवालेको कालकूट महाविष कहते हैं. १मोरकेसे रंगका मयूराख्य है, २ बिन्दुसा बिन्दुक है, ३ जो चित्रवर्ण कमलके कन्दके

समान होता है वह और सत्तूके समान हो उसे सक्तुक कहते हैं, ४ वालुक वालूके रंगका, ५ पीले रंगका वत्सनाभ, ६ शंख के रंगका शंखनाभ, ७ सुफेद रंगका सुमंगल, ८ घना भारी कडा और सींगके आकारवाला शृंगी, ९ बन्दरकेसे रंगका मर्कट, १० नागरमोथाके समान मुस्तक, ११ कीचकेसे रंगका सफेद पीला और मैला कर्दम, १२नीले कमलके रंगका पुष्कर, १३ मुर्गेके रंगका शिखी, १४ हलदीके रंगका हारिद्रक, १५ हरे रंगका हरित, १६ चक्रके आकारका चक्र,१७ और नीले वर्णका हलाहल होता है,१८ पीला और सफेद रंगका ब्राह्मण, लाल रंगका क्षत्री, पीले रंगका वैश्य और काले रंगका शूद्र होता है. ब्राह्मण वर्ण विष रोगमें, क्षत्रियवर्ण विष भक्षणमें, सब व्याधियोंमें वैश्य और सांपके काटनेमें, शूद्रवर्णका विष दिया जाता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

इति विलक्षणानि ।

अथ मारणमाह ।

समटंकणकं पिष्टं तद्विषं मृतमुच्यते ॥ ११ ॥
योजयेत् सर्वरोगेषु न विकारं करोति हि ॥

अर्थ-विषके बराबर सुहागा डालकर घोटनेसे विष मरजाता है. फिर सब रोगोंपर देनेसे कुछ विकार नहीं करता ॥ ११ ॥

अथ विषस्य शोधनमारणम् ।

विषभागांश्च कणवत्स्थूलान् कृत्वा तु भाजने ॥ १२॥
तत्र गोमूत्रकं क्षिप्त्वा प्रत्यहं नित्यनूतनम् ॥
शोषयेत्रिदिनादूर्ध्वं कृत्वा तीव्रातपे ततः ॥ १३ ॥
प्रयोगेषु प्रयुंजीत भागमानेन तद्विषम् ॥

अर्थ-विषक छोटे २ टुकडे कर मिट्टीके बर्तनमें रख तीन दिनतक नित्य गायके नया मूत्रमें डालकर धूपमें रखकर तीन

दिन पीछे सुखाले फिर मात्राके अनुसार इसका प्रयोग करै ॥ १२ ॥ १३ ॥

इति विषशोधनमारणम्।

विषस्य मारणं प्रोक्तमथ सेवां प्रवक्ष्यहम् ॥ १४ ॥
शरद्ग्रीष्मवसंतेषु वर्षासु च प्रदापयेत् ॥
चातुर्मास्ये हरेद्रोगान् कुष्ठलूतादिकानपि ॥ १५ ॥
प्रथमे सर्षपी मात्रा द्वितीये सर्षपद्वयम् ॥
तृतीये च चतुर्थे च पंचमे दिवसे तथा ॥ १६ ॥
षष्ठे च सप्तमे चैव क्रमवृद्ध्या विवर्द्धयेत् ॥
सप्तसर्षपमात्रेण प्रथमं सप्तकं भवेत् ॥ १७ ॥
क्रमहानिं तथाक्षेपं द्वितीयं सप्तकं विषम् ॥
यवमात्रं विषं देयं तृतीये सप्तके क्रमात् ॥ १८ ॥
वृद्ध्यां हान्या च दातव्यं चतुर्थे सप्तके तथा ॥
यवमात्रं ग्रसेत्स्वस्थो गुञ्जामात्रं तु कुष्ठवान् ॥ १९ ॥
अशीतिर्यस्य वर्षाणि वसुवर्षाणि यस्य वा ॥
विषं तस्मै न दातव्यं दत्तं चेद्दोषकारकम् ॥ २० ॥
दद्देद्ध सर्वरोगेषु घृताशिनि हिताशिनि ॥
क्षीराशनं प्रयोक्तव्यं रसायनरते नरे ॥ २१ ॥
ब्रह्मचर्यप्रधानं हि विषकल्पे तदाचरेत् ॥
पथ्ये स्वस्थमना भूत्वा तदा सिद्धिर्न संशयः ॥ २२ ॥

अर्थ–विषके मारणकी विधि कह चुके. अब इसके सेवनकी विधि लिखते हैं-शरद,ग्रीष्म,वर्षा और वसंतऋतुमें विषका सेवन विधिपूर्वक करे विषको चार महीने सेवन करनेसे कोढ़ और

लूतादिक सब रोग नष्ट हो जाते हैं पहिले दिन विषकी मात्रा सरसोंके बराबर ले दूसरे दिन दो सरसोंके बराबर इसप्रकार क्रमसे बढाकर सातवें दिन सात सरसोंकी बराबर ले फिर दूसरे सप्ताहमें सात सरसोंकी बराबरही प्रतिदिन खाता रहै, फिर दूसरे सप्ताह अर्थात् १४ दिनके पीछे पन्द्रहवें दिनसे घटाता जाय फिर तीसरे सप्ताहमें विषकी मात्रा जौकी बराबर दे फिर प्रतिदिन बढ़ाता जाय यहांतक कि, चौथे सप्ताह प्रतिदिन घटाकर फिर एक जौ पर ले आवै, आरोग्य मनुष्य जौकी बराबर मात्राले और कोढीको एक रत्ती मात्रादे अस्सी वर्षके बुड्ढेको और आठ वरसके बालकको अर्थात् बालक और बुड्ढोंको विष न दे, देनेसे विकार पैदा करता है सब रोगोंमें इसके सेवन करनेवालेको घी और दूध हितकारक हैं इसका सेवन करनेवाला ब्रह्मचर्यसे रहे पथ्य करे और स्वस्थ चित्त रहै तो विष कलपकी सिद्धिमें कुछ संशय नहीं है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

इति विषसेवा ।

मात्राधिकं यदा मर्त्यः प्रमादाद्भक्षयेद्विषम् ॥
अष्टौ वेगास्तदा तस्य जायंते नात्र संशयः ॥ २३ ॥

अर्थ–जो मनुष्य भूलकर विषकी मात्रा अधिक खाले तो निश्चय उसको आठ वेग होंगे ॥ २३ ॥

प्रथमे वेग उद्वेगो द्वितीये वेपथुर्भवेत् ॥
तृतीये घोरदाहः स्याच्चतुर्थे पतनं भुवि ॥ २४ ॥

अर्थ–पहिले वेगमें उद्वेग (घबडाहट) दूसरेमें कम्पन तीसरे वेगमें घोर दाह अथवा जलन चौथेमें पृथ्वीपर गिर पड़ना॥२४॥

फेनं तु पंचमे वेगे षष्ठे विकलता भवेत् ॥
जडता सप्तमे वेगे मरणं चाष्टमे भवेत् ॥ २५ ॥

अर्थ-पांचवें वेगमें मुखसे झाग डालना, छठेमें विकलता और सातवें वेगमें जडता (कुछ कहने सुननेका ज्ञान नहीं) और आठवें वेगमें मनुष्य मर जाता है ॥ २५ ॥

विषवेगांश्च विज्ञात्वा मंत्रतंत्रैर्विनाशयेत् ॥
साधकानां हितार्थाय सदाशिवमुखोद्गतः ॥ २६ ॥
सर्वविषविनाशार्थं प्रोच्यते मंत्र उत्तमः ॥ २७ ॥

अर्थ-इन विषके वेगोंको अच्छे प्रकार जानकर इनका निवारण तंत्र मंत्रसे करै साधकोंके हितके लिये श्रीसदाशिवके श्रीमुखसे निकले हुए सब प्रकारके विष और उनके वेगोंकी शान्तिके लिये यह उत्तम मंत्र है ॥ २६ ॥ २७ ॥

अथ मंत्रः ।

ओं नमो भगवते घोणेयन् हर हर दर दर पर पर तर तर वर वर वध वध वः वः लः लः र र लां लां लां हरलां हरहर भवसर रां रां क्षीं क्षीं ह्रीं ह्रीं भगवति श्री घोणेयन् सं सं सं वर वर रसः ध वर वर खंडच रूपह्रीं वर विहंगम मानुष योगक्षेमं वदशेषारेशेषारे पपः स्वाहा ॥ २८ ॥

विद्यैषा स्मृतिमात्रेण नश्यन्ते गुत्थकादयः ॥
सप्तजप्तेन तोयेन प्रोक्षयेत् कालचोदितम् ॥ २९ ॥

अर्थ-इस मंत्रके स्मरणमात्रसे गुत्थकादिकका नाश होजाताहै इसमंत्रको सातबार जपकर मंत्र पढाहुआ जल छिडक देनेसे विष उतर जाताहै-॥ २८ ॥ २९ ॥

उत्तिष्ठति स वेगेन शिखाबंधेन धारयेत् ॥
त्रिमंत्रितेन शंखेन दुंदुभिर्वादयेद्यदि ॥ ३० ॥

अर्थ-वेगसे उठेहुएको चोटी पकडकर थामले फिर तीनवार मंत्र पढकर जो शंख और दुंदुभी बजावे तो ॥ ३० ॥

देशांतरे शरीरेऽपि निर्विषं कुरुते क्षणात् ॥
विषं दृष्ट्वा यदा मंत्री मंत्रमावर्तयेत्सकृत् ॥
याति निर्विषतां दृष्ट्वा अपि मारशतानि च ॥ ३१ ॥

अर्थ-दूरसेभी क्षणभरमें विष उतार सक्ता है-मंत्री जो विषको देखकर एक संग मंत्र पढे चलाजाय तो भी विष शीघ्रही उतर जाताहै-यदि सौ मारनेवाले होय तौभी ॥ ३१ ॥

गोघृतपानाद्धरते विविधं गरलं च वंध्यकर्कोटी ॥
सकलविषदोषशमनी त्रिशूलिका सुरभिजिह्वा च ॥ ३२ ॥

अर्थ-वन्ध्याकर्कोटी गौके घृतके साथ पीनेसे सब विष दूर होजाते हैं इसीप्रकार त्रिशूली और गोभी भी सब विषोंको दमनकर देती है ॥ ३२ ॥

तुत्थेन टंकणेनैव म्रियते पेषणाद्विषम् ॥
अतिमात्रं यदा भुंक्ते तदाज्यं टंकणं पिबेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ-नीलाथोथा और सुहागेके साथ विषको पीसनेसे विष मरजाता है अधिक मात्रा खानेसे जो विष विकार पैदा करने लगे तो घीमें सुहागा मिलाकर पी लेनेसे तत्क्षण विष दूर होजाता है ॥ ३३ ॥

न दातव्यं न भोक्तव्यं विषं वादे कदाचन ॥
आचार्य्येण तु भोक्तव्यं शिष्यप्रत्ययकारणम् ॥ ३४ ॥

अर्थ-विषको विवादमें न किसीको देना चाहिये न स्वयं खाना चाहिये परन्तु आचार्यको शिष्यकी प्रतीति करानेके लिये पहिले स्वयं भक्षण करना चाहिये ॥ ३४ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां विषलक्षणसेवा-
परिहारकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथाष्टधातुशोधनमारणम् ।

हेमादिलोहकिट्टान्तं शोधनं मारणं गुणम् ॥
वक्ष्ये सप्रत्ययं योगं यथागुरुमुखोत्थितम् ॥ १ ॥

अर्थ–सुवर्ण आदि लोह कीटी पर्य्यन्तका शोधन और मारण श्रेष्ठ योगोंके साथ जैसा गुरुमुखसे सुना गया है कहताहूं ॥१॥

तैले तक्र गवां मूत्रे क्वाथे कौलत्थकांजिके ॥
तप्तं तप्तं निषिंचेत्तु तत्तद्रावे तु सप्तधा ॥ २ ॥
स्वर्णादिलोहपर्य्यन्तं शुद्धिर्भवति निश्चितम् ॥

अर्थ–सुवर्ण चांदी तांबा इत्यादिके पतले पत्र करके तेल-मट्ठा-गोमूत्र कुलथीके काढे व कांजीमें सात सात बार गरम करके बुझानेसे सब धातुओंकी निश्चय शुद्धि होजाती है ॥ २ ॥

अथ पृथक्पृथक् शोधनमाह ।

शोधनं मारणं चैव कथ्यते च मयाधुना ॥ ३ ॥
मृत्तिकामातुलुंगाम्लैः पंचवासरभाविता ॥
सभस्मलवणा हेम शोधयेत्पुटपाकवत् ॥ ४ ॥

अर्थ–अब धातुओंका शोधन और मारण कहते हैं बिजोराके रसकी पाँच बार भावना दीहुई मिट्टी, भस्म और नोंनसे सुवर्णको पुटपाक करके शोधे ॥ ३ ॥ ४ ॥

अथ हेमशोधनम् ।

शुद्धसूतसमं हेम खल्वे कुर्य्याच्च गोलकम् ॥
अधोर्ध्वं गंधकं दत्वा सर्वं तुल्यं निरुध्य च ॥ ५ ॥
त्रिंशद्वनोपलैर्देयं पुटान्येवं चतुर्दश ॥
निरुत्थं जायते भस्म गंधो देयः पुनः पुनः ॥ ६ ॥

अर्थ–सुवर्णके बराबर शुद्ध किया हुआ पारा ले कजलीकर गोला बनाय शराव संपुटमें रखदे, ऊपर नीचे गंधक रखकर मुँह बन्दकर कपडमिट्टी करदे, फिर तीस आरने उपलानकी आगमें फूंके इसीप्रकार चौदह बार करनेसे सुवर्णकी निरुत्थ भस्म होजाती है परन्तु गंधक बारबार देता रहे५॥६॥

अन्यच्च ।

कृत्वा कंटकवेध्यानि स्वर्णपत्राणि लेपयेत् ॥
लुंगांबुभस्मसूतेन म्रियते दशभिः पुटैः ॥ ७ ॥

अर्थ–सुवर्णके कंटक वेधी पत्र बनाकर विजोरेके रस और पारेकी भस्मसे पत्रोंको लेपन करे फिर गजपुटकी आग देनेसे इस प्रकार दशपुट देनेसे सुवर्णका भस्म होजाता है ॥ ७ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

रसस्य भस्मना वाथ रसैर्वा लेपयेद्दलम् ॥
हिंगुहिंगुलसिंदूरैः शिलासाम्येन लेपयेत् ॥ ८ ॥
संमर्द्य कांचनद्रावैर्दिनं कृत्वाथ गोलकम् ॥
तं भांडस्य तले धृत्वा भस्मना पूरयेद्दृढम् ॥ ९ ॥
अग्निं प्रज्वालयेद्गाढं द्विनिशं स्वांगशीतलम् ॥
उद्धृत्य सावशेषं च पुनर्देयं पुटत्रयम् ॥ १० ॥
अनेन विधिना स्वर्णं निरुत्थं जायते मतिम् ॥
एतद्रसायनं बल्यं वृष्यं शीतं क्षयादिहृत् ॥ ११ ॥

अर्थ–पारेका भस्म अथवा पारेसे सुवर्णके कंटकवेधी पत्रोंको लेपटकर हींग-हिंगलू-सिन्दूर और मैनशिल बराबर बराबर लेकर कचनारके रसमें दिनभर मर्दनकर गोला बनावै उस गोलेको बर्तनके भीतर रखकर खूब राख भरदे फिर उसके नीचे दो राततक बराबर गहरी आगदे फिर ठंढा होनेपर उतारले. बाकी बचेहुए कच्चेको निकालकर फिर तीनपुट देकर अग्निपर धरदे इसप्रकार करनेसे सुवर्ण निरुत्थ भस्म होता है. यह भस्म रसायन है बलकारक है पुष्टिविधायक है ठंढा है और क्षयादि दोषोंको दूर करनेवाला है ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११

अन्यच्च ।

गलितस्य सुवर्णस्य षोडशांशेन सीसकम् ॥
योजयित्वा समुद्धृत्य निंबुनीरेण मर्दयेत् ॥ १२ ॥
तद्गोलकसमं गंधं चूर्णं दद्यादधोपरि ॥
शरावसंपुटे धृत्वा पुटेद्विंशद्वनोपलैः ॥ १३ ॥
एवं मुनिपुटैर्हैम नोत्थानं लभते पुनः ॥

अर्थ-सुवर्णको गलाकर उसमें सोलहवां भाग सीसा मिलाकर निकाल ले फिर नींबूके रसमें उसको चार पहरतक खरल करै फिर उसके समान गंधकका चूरा ऊपर नीचे लगाकर शरावसंपुटमें धर कपडमिट्टीकर बीस आरनेउपलोंकी आगमें रखदे इसप्रकार सात पुट देनेसे सुवर्णकी भस्म निरुत्थ होजातीहै ॥ १२ ॥ १३ ॥

अन्यच्च ।

माक्षिकं नागचूर्णं च पिष्टमर्करसे पुनः ॥ १४ ॥
हेमपत्रं च तेनैव म्रियते क्षणमात्रतः ॥
कषायतिक्तमधुरं सुवर्णं गुरु लेखनम् ॥ १५ ॥
वृष्यं रसायनं बल्यं चक्षुष्यं कांतिदं शुचि ॥
आयुर्मेदोवयः स्थैर्यवाग्विशुद्धिस्मृतिप्रदम् ॥ १६ ॥
क्षयोन्मादगदार्तानां शयनं परमुच्यते ॥

अर्थ-सुवर्णके कंटक वेधी पत्र बनाकर सोनामक्खी सीसेका चूरा आकके दूधमें खरलकर पत्रोंपर लेपदे फिर शरावसंपुटमें रख फूँकदे तो सुवर्णकी भस्म शीघ्र होजाती है. सुवर्णकी भस्मके गुण ये हैं-कसीलीहै चरपरी-मीठी-भारी-लेखन-हृदयको गुणकारक, रसायन, बलकारक, नेत्रोंको हितकारक

अच्छीकांति देनेवाली, आयु, मेदा-अवस्थाको स्थिर रखने-वाली, वाणीकी शुद्धि करनेवाली-स्मरणशक्तिको बढानेवाली-क्षय उन्माद और अन्यरोगोंसे पीडित मनुष्योंको नींद लावनेवाली है ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति सुवर्णमारणम् ।

अथ तारशोधनम् ।

भागेन क्षारराजेन द्रावितं शुद्धिमिच्छता ॥ १७ ॥

अर्थ-ओंगाके साथ रूपेको गलानेसे शुद्ध होजाता है॥१७॥

अथ तारमारणम् ।

तारपत्रं चतुर्भागं भागैकं शुद्धतालकम् ।
मर्द्यं जंबीरजैर्द्रावैस्तारपत्राणि लेपयेत् ॥ १८ ॥
रुद्ध्वा त्रिभिः पुटैः पाच्यं पंचविंशद्वनोपलैः ॥
म्रियते नात्र संदेहो गंधो देयः पुनः पुनः ॥ १९ ॥

अर्थ-चार भाग चांदी और एक भाग शुद्ध कीहुई हरताल लेकर जंभीरीके रसमें घोटकर चांदीके कंटकवेधी पत्रोंको लेपदे फिर शरावसंपुटकर पच्चीस आरनेउपलोंकी आगमें रखदे इसप्रकार तीन पुट देनेसे निस्सन्देह चांदी मरजाती है परन्तु गंधक बराबर देता रहै ॥ १८ ॥ १९ ॥

अन्यच्च ।

स्वर्णमाक्षिकगंधस्य समं भागं तु कारयेत् ॥
अर्कक्षीरेण संपिष्टं तारपत्रं प्रलिप्य च ॥ २० ॥
पुटेन जारयेत्तारं मृतं भवति निश्चितम् ॥

अर्थ-सोनामक्खी और गंधक बराबर बराबर लेकर आकके दूधमें खरलकर चांदीके कंटकवेधी पत्रोंपर लेपन करदे फिर शरावसंपुट देकर भस्म करनेसे निश्चय चांदीभी भस्म होजा-तीहै ॥ २० ॥

अन्यच्च ।

विधाय पिष्टिं सूतेन रजतस्याथ मेलयेत् ॥ २१ ॥
तालं गंधं समं पश्चान्मर्दयेन्निंबुकद्रवैः ॥
द्वित्रैः पुटैर्भवेद्भस्म योज्यमेवं रसादिषु ॥ २२॥

अर्थ-पारे और चांदीकी कजलीकर बराबर बराबर गंधक और हरिताल लेकर नींबूके रसमें मर्दन करै फिर दो तीन पुटकी आग देनेसे सम्पूर्ण औषधियोंमें योग करनेके लायक भस्म होजातीहै ॥ २१ ॥ २२ ॥

तारभस्मगुणाः ।

शीतं कषायं मधुरमम्लं वातप्रकोपजित् ॥
दीपनं बलकृत्स्निग्धं गूढाजीर्णविनाशनम् ॥ २३ ॥
आयुष्यं दीर्घरोगघ्नं रजतं लेखनं परम् ॥

अर्थ-चांदीकी भस्म ठंढी है, कसैली है, मीठी है, खट्टी है, बातको जीतनेवाली है-अग्निसंदीपन है-बलकारक है चिकनी है अजीर्णका नाश करनेवाली है-अवस्थाको बढानेवाली है और सब रोगोंको नाश करनेवाली है और लेखन है ॥ २३ ॥

अथ ताम्रशोधनावश्यकता ।

न विषं विषमित्याहुस्ताम्रं तु विषमुच्यते ॥ २४ ॥
एको दोषो विषे ताम्रे त्वष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः ॥

अर्थ-ऋषियोंने विषको विष नहीं कहा है किन्तु तांबेकोही विष कहा है विषमें तो केवल एकही दोष है परन्तु तांबेमें आठ दोष कहेगयेहैं ॥ २४ ॥

अथ अष्टदोषाः ।

भ्रमो मूर्च्छा विदाहश्च स्वेदक्लेदनवांतयः ॥ २५ ॥

अरुचिश्चित्तसंताप इति दोषा विषोपमाः ॥
तस्माद्विशुद्धं संग्राह्यं ताम्रं रोगप्रशान्तये ॥ २६ ॥

अर्थ-भ्रम, मूर्च्छा, दाह, स्वेदन, पीडा, वांति, अरुचि और चित्तसंताप ये आठ दोष विषके समान हैं इसलिये रोगकी शान्तिके हेतु शुद्ध ताम्र लेना चाहिये ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ ताम्रशोधनम्।

लवणैर्वज्रदुग्धेन ताम्रपत्रं विलेपयेत् ॥
अग्नौ संताप्य निर्गुंडीरसैः सिक्तं च सप्तधा ॥ २७ ॥
स्नुह्यर्कस्वरसेऽप्येवं शुल्बशुद्धिर्भविष्यति ॥

अर्थ-नमक और थूहरके दूधसे तांबेके कंटकवेधी पत्रोंको लेपन करे फिर अग्निमें तपा तपाकर निर्गुडीके रसमें सातबार बुझावै फिर इसीप्रकार सेहुंड और आकके रसमें बुझानेसे तांबा शुद्ध होजाता है ॥ २७ ॥

अन्यच्च।

गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना ॥ २८ ॥
शुध्यते नात्र संदेहो मारणं वाप्यथोच्यते ॥

अर्थ-तांबेके कंटकवेधी पत्रोंको गोमूत्रमें तेज अग्निसे पहरभर पचानेसे तांबा शुद्ध होजाता है अब मारणविधि कहते हैं ॥ २८ ॥

अथ ताम्रमारणम्।

सूतमेकं द्विधा गंधं यामं कन्यां विमर्दयेत् ॥ २९ ॥
द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं स्थाल्यागर्भे निरोधयेत् ॥
सम्यङ्मृल्लवणैः सार्द्धं पार्श्वे भस्म निधाय च ॥ ३० ॥
चतुर्यामं पचेच्चुल्यां पत्रपृष्ठे सगोमये ॥

जलं पुनः पुनर्देयं स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥ ३१ ॥
म्रियते नात्र संदेहः सर्वयोगेषु योजयेत् ॥

अर्थ-एक भाग पारा और दो भाग गंधक लेकर पहरभर ग्वारपाठेके रसमें मर्दन करै और दोनोंके समान तांबेके पत्र लेकर थालीसे ढकदे चारों ओर राख भरदे और उसके पास भी रखदे इसतरह गोबरसे ढके हुये तांबेके पत्रोंको चार पहरतक अग्निदे ऊपरसे बारबार जल डालता रहै फिर ठंढ़ा होनेपर उतारले तो तांबा सब योगोंके योग्य निस्संदेह मरजाता है ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

चतुर्थांशेन सूतेन ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥ ३२ ॥
अम्लपिष्टं द्विगुणितमधोर्ध्वं दापयेद्बलिम् ॥
चांगेरीकल्कगर्भं तद्भांडे यामं पचेद्दृढम् ॥ ३३ ॥
भस्मीभूतं ताम्रपत्रं सर्वयोगेषु योजयेत् ॥

अर्थ-तांबेसे चौथाई भाग पारा लेकर तांबेके पत्रोंपर चढ़ादे और दूनी इमलीके साथ पिसीहुई गंधक उसके ऊपर नीचे रखदे फिर चांगेरीकी लुगदीके बीचमें इसको रखकर मिट्टीके वर्तनमें पहरभर दृढ अग्निसे पचावै तौ सम्पूर्ण प्रयो-गके योग्य तांबेकी भस्म होजाती है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

अन्यच्च ।

जंवीररससंपिष्टं रसगंधकलेपितम् ॥ ३४ ॥
शुल्बपत्रं शरावस्थं त्रिपुटैर्याति पञ्चताम् ॥

अर्थ-जंभीरीके रसमें पारे और गंधककी कजली कर तांबेके कंटकवेधी पत्रोंपर लेपनकर शरावसंपुटकर तीनपुटकी आग देनेसे तांबेकी भस्म होजातीहै ॥ ३४ ॥

ताम्रभस्मगुणाः ।

ताम्रं तिक्ताम्लमधुरं कषायं शीतलं परम् ॥ ३५ ॥
कफपित्तक्षयं धातुकुष्टघ्नं च रसायनम् ॥
नाशयेच्छूलमर्शांसि वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३६ ॥

अर्थ-तांबेकी भस्म चरपरी है खट्टी है मधुर है कसैली है बहुत शीतल है कफपित्तको नाश करनेवाली है और धातुगत कुष्ठको दूर करती है रसायन है और शूल और बवासीरके वास्ते ऐसी है जैसे वृक्षके लिये बिजली ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ कांस्यपित्तलमारणम् ।

राजरीतिस्तथाघोषं ताम्रवन्मारयेत्पृथक् ॥
ताम्रवच्छोधनं तेषां ताम्रवद्गुणकारकम् ॥ ३७ ॥

अर्थ-पीतल और कांसीका तांबेकी रीतिसे मारण करै और तांबेहीकी रीतिसे शुद्धि करै तौ ये तांबेहीके समान गुणकारक हैं ॥ ३७ ॥

इति कांस्यपित्तलमारणम् ।

नागवंगौ च गलितौ रविदुग्धेन सेचयेत् ॥
त्रिवारं शुद्धिमायाति सच्छिद्रे हंडिकांतरे ॥ ३८ ॥

अर्थ-सीसा वा रांगको गलाकर आकके दूधमें तीनबार बुझानेसे शुद्ध होजाते हैं परन्तु हांडी छेददार होनी चाहिये उसमें दूध भरकर गलेहुए सीसे वा रांगको गेरता रहै ॥ ३८ ॥

इति नागवंगशोधनम् ।

अथ नागमारणम् ।

त्रिभिः कुंभपुटैर्नागो वासास्वरसमर्दितः ॥
सा शिला भस्मतामेति तद्रजः सर्वमेहजित् ॥ ३९ ॥

अर्थ–सीसा और मनसिलको अडूसेके रसमें घोटकर तीनवार गजपुटकी आग देनेसे भस्म होजाती है और यह भस्म सब प्रकारके प्रमेहोंको दूर करनेवाली होती है ॥ ३९ ॥

अथान्यः प्रकारः।

भूभुजंगमगस्तिं च पिष्ट्वा पात्रं विलेपयेत् ॥
तद्रसं विद्रुते नागे वासापामार्गसंभवम् ॥ ४० ॥
क्षारं विमिश्रयेत्तत्र चतुर्थांशं गुरूक्तितः ॥
प्रहरं पाचयेच्चुल्ल्यां वासादर्व्या च घट्टिता ॥ ४१ ॥
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं वासानीरे विमर्दयेत् ॥
पुटेत्पुनः समुद्धृत्य तेनैव परिमर्दयेत् ॥ ४२ ॥
एवं सप्तपुटं नागं सिंदूरं जायते ध्रुवम् ॥
तारस्थो रंजनो नागो वातपित्तकफापहः ॥
ग्रहणीकुष्ठमेहार्शःप्राणशोषविषापहः ॥ ४३ ॥

अर्थ–केंचुए और अगस्तके पत्रोंको पीस कर एक पात्रमें लेपकरदे और उसमें सीसा डालकर चूल्हे पर रखदे सीसेके पिघलनेपर अडूसे और ओंगाकी भस्म सीसेसे चौथाई लेकर उसमें डालता जाय और अडूसेकी एक लकडीसे सीसेको चलातारहै पहरभर पीछे उतारकर उसको अडूसेके रसमें मर्दन करै फिर पुट देकर भस्मकरै और फिर भी अडूसेके रसमें मर्दन करै इस प्रकार सात पुट देनेसे सीसेकी लाल भस्म होजाती है सीसा वातपित्त और कफको दूर करता है संग्रहणी कोढ, प्रमेह, बवासीर, प्राणशोष और विषको दूर करता है ॥ ४०॥४१॥४२॥४३॥

इति नागमारणम्।

अथ वंगमारणम्।

आभीरं शोधयेदादौ द्रावयेद्धंडिकांतरे ॥
अपामार्गचतुर्थांशं चूर्णितं मेलयेत्ततः ॥ ४४ ॥
स्थूलाग्रया लोहदर्व्या शनैस्तद्वचालयेत् ॥
यावद्भस्मत्वमायाति तावन्मर्द्यं च पूर्ववत् ॥ ४५ ॥
तत एकीकृतं सर्वं भवेदंगारवर्णकम् ॥
नूतनेन शरावेण रोधयेदंतरे भिषक् ॥
पश्चात्तीव्राग्निना पक्कं वंगभस्म भवेद्ध्रुवम् ॥ ४६ ॥

अर्थ-प्रथम रांगको शोधकर फिर हांडीमें रखकर उसको गलावै फिर उसका चतुर्थांश औंगाकी भस्म उसमें डालता जाय और लोहेकी कलछीसे धीरे धीरे चलाता रहै जबतक भस्म न हो पहलेकी तरह चलाता रहै फिर लाल रंग होनेपर सबको इकट्ठाकर नये शरावसंपुटमें रख प्रचंड आगसे पचानेपर बंग भस्म होजाता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

अन्यच्च।

वंगं सतालमर्कस्य पिष्ट्वा दुग्धेन तं पुटेत् ॥
शुष्काश्वत्थभवैर्वल्कैः सप्तधा भस्मतां व्रजेत् ४७ ॥
वंगं तिक्तोष्णकं रूक्षमीषद्वातप्रकोपनम् ॥
मेहश्लेष्मामयघ्नं च कृमिघ्नं मोहनाशनम् ॥ ४८ ॥

अर्थ-आकके दूधमें पिसीहुई गंधकके पुटमें बंगको रखदे ऊपरसे सूखे पीपलकी छालका चूरा डालता जाय ऐसे सात वार करनेसे बंग भस्म होजाताहै बंगभस्म चरपरी है गरम है रूक्ष है कुछ वातको प्रकोप करनेवाली है प्रमेह और श्लेष्माको

दूर करनेवाली है कीडोंको दूर करती है मूर्च्छाको छुडाती है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

इति वंगमारणम् ।

अथ लोहशुद्धिः ।

त्रिफलाष्टगुणे तोये त्रिफला षोडशं पलम् ॥ ॥
तत्काथे पादशेषे तु लोहस्य पलपंचकम् ॥ ४९ ॥
कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवारं निषेचयेत् ॥
एवं प्रलीयते दोषो गिरिजो लोहसंभवः ॥ ५० ॥

अर्थ–सोलह तोले हरड बहेडे आँवलेको ४८ तोले पानीमें भरकर अग्निपै चढ़ादे चौथाई रहनेपर उतारले फिर पांच तोले लोहेके पत्र गरम करके उसमें सातवार बुझानेसे लोहेमें जो गिरिजदोषहै वह नष्ट होजाताहै ॥ ४९ ॥ ५० ॥

इति लोहशुद्धिः ।

अथ लोहमारणम् ।

शुद्धस्य सूतराजस्य भागो भागद्वयं बलेः ॥
द्वयोः समं सारचूर्णं मर्दयेत्कन्यकांबुना ॥ ५१ ॥
यामद्वयं ततो गोलं स्थापयेत्ताम्रभाजने ॥
आच्छाद्यैरंडजैः पत्रैरुष्णो यामद्वयं भवेत् ॥ ५२ ॥
त्रिदिनं धान्यराशिस्थं तं ततो मर्दयेद्दृढम् ॥
रजस्तद्वस्त्रगालितं नीरे तरति हंसवत् ॥ ५३ ॥
तीक्ष्णं मुंडं कांतलोहं निरुत्थं जायते मृतम् ॥
त्रिफलामधुसंयुक्तमेतत्सेव्यं रसायनम् ॥ ५४ ॥

अर्थ-शुद्ध पारा एक भाग और गंधक दो भाग और दोनोंकी बराबर अथवा तीन भाग लोहा लेकर ग्वारपाठेके रसमें दोपहरतक खरल करे फिर गोला बनाकर तांबेके बर्तनमें रखदे ऊपरसे अरंडके पत्तोंसे ढककर दो पहरतक धूपमें रहनेदे फिर तीन दिनतक उसे धानकी राशिमें गडा रहनेदें फिर इसको खरलकर कपडेमें छानले तौ यह भस्म पानीपर हंसकी तरह तैरने लगे-इसीप्रकार कांत तीक्ष्ण-और मुंडलोहकी भस्म होजाती है इसको त्रिफला और शहदके साथ सेवन करनेसे बडी गुणकारक है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अथान्यः प्रकारः ।

द्वादशांशेन दरदं तीक्ष्णचूर्णस्य मेलयेत् ॥
कन्यानीरेण संमर्द्य यामयुग्मं तु तत्पुटेत् ॥
पुटेदेवं लोहचूर्णं सप्तधा मरणं व्रजेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ-पोलाद लोहेका बारहवां हिस्सा सिंदूर मिलाकर घीकुवारके रसमें दो पहरतक खरल करै फिर शरावसंपुटकर गजपुटकी आग दे इसप्रकार सातवार पुट देनेसे लोहेकी भस्म हो जाती है ॥ ५५ ॥

अन्यच्च ।

काकोदुंबरिकानीरे लोहपत्राणि सेचयेत् ॥
तप्ततप्तानि षड्वारं कुट्टयेत्तदुलूखले ॥ ५६ ॥
तत्पंचमांशं दरदं क्षिप्त्वा सर्वं विमर्दयेत् ॥
कुमारीनीरतस्तीक्ष्णं पुटे गजपुटे तथा ॥ ५७ ॥
त्रिवारं त्रिफलाक्काथैस्तत्संख्याकैरतंद्रितः ॥
एवं चतुर्दशपुटैर्लोहं वारितरं भवेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ-कठूमरके रसमें गरम गरम लोहेके पत्रोंको बुझाकर ऊखलमें कूट ले फिर उसमें पांचवां हिस्सा सिंगरफ मिलाकर सबको खरल करै ग्वारपाठेका रस मिलाता रहै इस प्रकार गजपुटकी तीन तेज आग देवे फिर फिर तीनही वार त्रिफलाके क्काथमें खरल करै इस प्रकार चौदह पुट देनेसे लोहा पानीमें तैरनेके योग्य होजाता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

अन्यच्च ।

तिंदूफलस्य मज्जायां खड्गं लिप्त्वाऽऽतपे खरे ॥
धारयेत्कांस्यपात्रेण दिनैकेन पुटत्यलम् ॥ ५९ ॥
लेपं पुनः पुनः कुर्याद्दिनान्ते तत्प्रपेषयेत् ॥
त्रिफलाक्काथसंयुक्तं दिनैकेन मृतिर्भवेत् ॥ ६० ॥

अर्थ-तिन्दूफलके गूदेसे लोहेके पत्रको लेपन करके कांसीके पात्रमें रखकर तेज धूपमें सुखा लेवे फिर इसीतरह दिनमें बार-बार लेप करता रहै सायंकालको त्रिफलाके क्काथके साथ खरल-करके फिर गजपुटकी आग देनेसे एकही दिवसमें भस्म होजाता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

अथान्यः प्रकारः ।

लोहं पत्रमतीव तप्तमसकृत्क्काथे क्षिपेत्त्रैफले ॥
चूर्णीभूतमतो भवेत्त्रिफलजे क्काथे पचेद्गोजले ॥ ६१ ॥
मत्स्याक्षीत्रिफलारसेन पुटयेद्यावन्निरुत्थं भवेत् ॥
पश्चादाज्यमधुप्लुतं सुपुटितं शुद्धं भवेदायसम् ॥६२॥

अर्थ-लोहेके पत्र बहुत गरम करके त्रिफलाके क्काथमें बुझावै और त्रिफलाहीके क्काथमें खरल करके गोमूत्रमें पचावै और मछेछी और त्रिफलाके रसमें उसको जबतक भावना दे तबतक निरुत्थ होय फिर घी और शहदमें लपेटकर पुट देनेसे लोहा शुद्ध होजाता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

भस्मपरीक्षा ।

सर्वमेतन्मृतं लोहं ध्मातव्यं मृत्पंचके ॥
यद्येवं स्यान्निरुत्थानं सत्यं वारितरं भवेत् ॥
गंधकं तुत्थकं लोहं तुल्यं खल्वे विमर्दयेत् ॥ ६३ ॥
दिनैकं कन्यकाद्रावे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
इत्येवं सर्वलोहानां कर्त्तव्येत्थं निरुत्थितः ॥ ६४ ॥

अर्थ–इस सम्पूर्ण लोहेकी भस्मको मृत्पंचकमें बुझावै जो निरुत्थ होजाय तौ सत्यही पानीमें तैरनेके योग्य होय गंधक लीलाथोथा और इनके समान लोहेको ग्वारपाठेके रसमें खरलकर कपड़मिट्टी कर गजपुटकी आग दे ऐसा करनेसे लोहा निरुत्थ होजाता है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

तस्य गुणाः ।

कृष्णायसोऽथ शूलार्शः कुष्ठपांडुत्वमेहनुत् ॥
वयःस्थं गुरु चक्षुष्यं सरं मेदोगदापहम् ॥ ६५ ॥
आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्त्ता रोगहस्य हन्ता मदनस्य भर्त्ता।
अयःसमानं नहि किंचिदन्यद्रसायनं श्रेष्ठतमं हि जंतोः ६६

अर्थ–काला लोहा शूल, बवासीर, कोढ, पीलिया और प्रमेहको दूर करता है अवस्थाको बढानेवाला, भारी, नेत्रोंको हितकारक, दस्तकारक और मेदाके रोगोंका नाश करनेवाला है. आयु, बल और वीर्यको बढानेवाली रोगोंको दूर करनेवाला, कामको उत्तेजित करनेवाला, लोहेकी भस्मके समान प्राणियोंको हितकारक और कोई रसायन नहीं है ॥ ६५॥६६॥

इति लोहमारणम् ।

तस्य पथ्यापथ्यविधिः ।

कूष्मांडं तिलतैलं च माषान्नं राजकं तथा ॥
मद्यमम्लरसं चैव त्यजेल्लोहस्य सेवकः ॥ ६७ ॥

अर्थ-पेठा और काशीफल, तिलतेल, उड़द, राई, मदिरा और खटाईकी चीजें लोहेके सेवन करनेवाला छोडदे ॥ ६७ ॥

किट्टग्रहणम्।

ये गुणा मारिते मुंडे ते गुणा मुंडकिट्टके ॥
तस्मात्सर्वत्र मंडूरं रोगशान्त्यै नियोजयेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ-जो गुण मरेहुये मुंडमें हैं वेही गुण मुंडकिट्टीमें हैं इसी कारण सब रोगोंकी शान्तिके निमित्त मंडूरहीका योग करना चाहिये ॥ ६८ ॥

शतोत्थमुत्तमं किट्टं मध्यमाशीतिवार्षिकम् ॥
अधमं षाष्टिवार्षीयं ततो हीनं विषोपमम् ॥ ६९ ॥

अर्थ-सौ वर्षकी कीटी उत्तम और अस्सी वर्षकी मध्यम साठ वर्षकी अधम और इससे कमकी विषके समान होतीहै ॥६९॥

दाधाक्षकाष्टैर्मलमायसं तु गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ॥
विचूर्ण्य लीढं मधुनाचिरेण नृणां क्षयं पांडुगदं निहन्ति ७०

अर्थ-बहेडेके कोयलोंमें कीटीको अच्छीतरह गरम करके गोमूत्रमें आठबार बुझावै फिर पीसकर शहदके संग चाटे तो थोड़ेही दिनोंमें मनुष्योंका क्षयी और पीलिया रोग दूर होजाय ॥ ७० ॥

किट्टाद्दशगुणं मुंडं मुंडात्तीक्ष्णं शताधिकम् ॥
तीक्ष्णाल्लक्षगुणं कांतं भक्षणात्कुरुते गुणम् ॥ ७१ ॥

अर्थ-कीटीसे दशगुणा मुंडलोहमें और मुंडसे सौ गुना तीक्ष्ण लोहमें और तीक्ष्णसे लाखगुना गुण कांतलोहमें है यह मनुष्योंके लिये गुणकारक है ॥ ७१ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां स्वर्णाद्यष्टधातुशोधन-मारणसेवनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

क्षीराब्धेरुत्थितं देवं पीतवस्त्रं चतुर्भुजम् ॥
वन्दे धन्वन्तरिं नित्यं नानागदनिषूदनम् ॥ १ ॥

अर्थ-क्षीरसमुद्रनिवासी भगवान् पीतांबरधारी चतुर्भुज नाना प्रकारके रोगोंको नाश करनेवाले धन्वन्तरि महाराजको नित्य प्रणाम करताहूं ॥ १ ॥

यथागुरुमुखं श्रुत्वा सानुभूतं च यद्रसम् ॥
स रसः प्रोच्यते ह्यत्र व्याधिनाशनहेतवे ॥ २ ॥

अर्थ-जैसे गुरुके मुखसे सुने और अनुभव किये हुए (अजमाये हुए) रसरोगोंको दूर करनेकेलिये इस जगह लिखे गये हैं ॥२॥

मुक्त्वैकं रसवैद्यं च लाभपूजायशस्विनम् ॥
तृणकाष्ठौषधैर्वैद्यः को लभेत वराटिकाम् ॥ ३ ॥

अर्थ-लाभ, पूजा और यशके भागी रसोंके जाननेवाले वैद्यको छोडकर कौनसा वैद्य तिनुके और काष्ठकी औषधियोंसे एक कौडीभी प्राप्त करसक्ता है ॥ ३ ॥

यस्य रोगस्य यो योगो मुनिभिः परिकीर्तितः ॥
तत्तद्योगसमायुक्तं भिषक् सूतं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

अर्थ-महार्षियोंने जिस रोगपर जो औषधि लिखी है उसी २ योगमें पारा मिलाकर वैद्य दे ॥ ४ ॥

मात्राधिकं न सेवेत रसं वा विषमौषधम् ॥
व्याधिबद्धं च कोष्ठञ्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-मात्रासे अधिक पारा वा और २ औषध वा अन्य विष जैसे संखिया, कुचला, मीठातेलिया न खाय-वैद्यको उचित है कि, रोगको जानकर या कोष्ठ अर्थात् उदरके बलाबलको देखकर अर्थात् रोगीकी अवस्थाके अनुसार मात्रा दे॥५॥

अथ रत्नगर्भपोटलीरसः ।

रसं वज्रं हेम तारं नागं लोहं च ताम्रकम् ॥
तुल्यांशमारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम् ॥ ६ ॥
शंखं च तुल्यतुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः ॥
मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेनापूर्य वराटिकाम् ॥ ७ ॥
टंकणं रविदुग्धेन पिष्ट्वा मूषां च बंधयेत् ॥
मृद्भांडे च निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ ८ ॥
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥
आदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुंड्या सप्तभावनाः ॥ ९ ॥
आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः ॥
द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुंजाचतुष्टयम् ॥ १० ॥
क्षयरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ॥
योजयेत्पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचेन च ॥ ११ ॥
महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽतिसारके ॥
पोटलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहेषु योजयेत् ॥ १२ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा, हीरा, सुवर्ण, चांदी, सीसा, लोहा, तांबा और मरे हुए मोती सोनामक्खी और मूंगा शंख नीलाथोथा इन सबकी भस्म बराबर बराबर लेकर सातदिनतक चीतेके काढेमें खरल करे फिर इसको पीली कौडीमें भरकर आकके दूधसे घुटे हुए सुहागेसे कौडीका मुख बन्दकरदे फिर मूषामें रख मिट्टीके बर्तनमें रखकर गजपुटमें फूंकदे ठंढा होनेपर उतारकर निर्गुंडीके रसकी सात भावना दे फिर अदरखके रसकी सात भावना दे और चीतेके रसकी इक्कीस भावना दे फिर सूखनेपर चार रत्तीकी इसकी मात्रा देवे तो साध्य और असाध्य क्षय रोगको दूरकरे पीपल और शहदके साथ अथवा कालीमिरच

और घीके साथ खानेसे आठ महारोगोंको और कास, ज्वर, श्वास, और अतीसारको जीते यह रत्नगर्भपोटलीरस योगवाही है ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

इति रत्नगर्भपोटलीरसः ।

अथ मृगांकरसः ।

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं भवेत् ॥
गंधकं च समं तेन रसपादस्तु टंकणम् ॥ १३ ॥
सर्वं तद्गोलकं कृत्वा कांजिकेनावशोषयेत् ॥
भांडे लवणपूर्णे च पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ १४ ॥
मृगांकसंज्ञको ज्ञेयो राजयोगनिकृंतनः ॥
गुंजाचतुष्टयं चास्य मरिचैर्भक्षयेद्भिषक् ॥ १५ ॥
पिप्पलीदशकैर्वापि मधुना लेहयेद्बुधः ॥
पथ्यं सुलघुमांसेन प्रायेणास्य प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥
दध्याज्यगव्यं तक्रं वा क्षीरं वाऽऽजं प्रयोजयेत् ॥
व्यंजनैर्घृतपक्वैश्च नातिक्षारैरहिंगुकैः ॥ १७ ॥
एलाजंबीरमरिचैः संस्कृतैरविदाहिभिः ॥
वृंताकतैलबिल्वानि कारवेल्लं च वर्जयेत् ॥ १८ ॥
स्त्रियं परिहरेद्दूरात्कोपं चापि परित्यजेत् ॥
वल्ली तुंबरिकानाम तन्मूलं क्वाथयेत्पलम् ॥ १९ ॥
कटुकत्रयसंयुक्तं पाययेत्कासशान्तये ॥
त्रिशूली या समाख्याता तन्मूलं क्वाथयेद्बलम् ॥ २० ॥
ईषद्धिंगुसमायुक्तं काकिणी चित्रकं वचा ॥
भक्षयेत्पथ्यभोज्यं च सर्वरोगप्रशान्तये ॥ २१ ॥

मर्कटीपत्रचूर्णस्य गुटिकां मधुना कृताम् ॥
धारयेत्सततं वक्रे कासविष्टंभनाशिनीम् ॥ २२ ॥
छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सनागरम् ॥
छागोपसेवासहनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ २३ ॥
मलायत्तं वलं पुंसां शुक्रायत्तं च जीवितम् ॥
अतो विशेषतो रक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ २४ ॥

अर्थ–पारेके बराबर बराबर सोनेके वरक और दूने मोती और पारेके बराबर गंधक और चौथाई सुहागा सबको कांजी-में पीसकर गोला बनावे फिर नमकसे भरेहुए बर्तनके बीचमें इस गोलेको रखदे बासनका मुख बन्दकर चार पहरतक प्रचंड अग्निसे पचावै तो यह मृगांक संज्ञक रस तैयार होजाय यह राजयक्ष्माको दूर करता है इसकी मात्रा चार रत्तीकी है इसको कालीमिरच अथवा पीपल और शहदके साथ खाय प्रायः इसी पर हलके मांसका पथ्य देवे दही मक्खन गायकी छांछ अथवा दूध अथवा बकरीका दूध वा छांछका पथ्य देवे घीमें पकेहुए पदार्थ पूरी कचौरी इत्यादि खाय परन्तु इनमें बहुत नमक वा हींग न होवे इन पदार्थोंमें इलायची जंभीरी कालीमिरच हों पर तेज न हों बैंगन तेल वेल और करेले वर्जित हैं स्त्री और क्रोधको पास न आनेदे बेल और तूंबरीकी जडका काढाकर त्रिकुटा डालकर पीनेसे कास दूर होता है त्रिशूलीकी जडके काढेमें काकतुंडी, चीता और वच और थोडी फूलीहुई हींग डालकर इस रसको पीवे तो सब प्रकारके रोग दूर होवें कौंछके पत्तोंके चूर्णमें शहद मिलाकर गोली बना मुँहमें रखनेसे खांसी और मलका विकार दूर होता है बकरेका मांस बकरीका दूध बकरीका घी सोंठ मिलाकर खाय और बकरियोंको पाले और रातदिन बकरियोंमें रहे तो राजयक्ष्मा दूरहो मनुष्योंमें

मलके आधीन बल है और वीर्यके आधीन जीना है अतएव उचित है कि राजयक्ष्मामें मल और वीर्यकी अच्छेप्रकार रक्षा-करें॥ १३। १४। १५। १६।१७।१८। १९। २०। २१। २२। २३। २४॥

इति मृगांकरसः ।

अथ लोकनाथपोटलीरसः ।

पलं कपर्दचूर्णस्य पलं पारदगंधयोः ॥
माषोऽपि टंकणस्यैको जंबीरेण विमर्दयेत् ॥ २५ ॥
पुटेल्लोकेश्वरो नामा लोकनाथोऽयमुत्तमः ॥
जयेत्कुष्ठं रक्तपित्तमन्यरोगं क्षयं नयेत् ॥ २६ ॥
पुष्टवीर्यप्रदाता च कांतिलावण्यदः परः ॥
कोऽस्ति लोकेश्वरादन्यो नृणां शंभुमुखोद्गतात् ॥ २७ ॥

अर्थ–कौडीकी भस्म चार तोले पारा और गंधक चार तोले और सुहागा एक मासे ये सब जंभीरीके रसमें मर्दन करे यह लोकेश्वरका कहा हुआ लोकनाथ रस रक्तपित्त कोढ और सब रोगोंका नाश करे पुष्टि और वीर्यका देनेवाला है कांति और सुन्दरताका देनेवालाहै महादेवजीके कहेहुये इस लोकेश्वररससे और उत्तम रस मनुष्योंके लिये कोई नहीं है॥ २५॥ २६॥ २७॥

इति लोकनाथपोटलीरसः ।

अथ लोकेश्वरपोटलीरसः ।

रसस्य भस्मना हेम पादांशेन प्रकल्पयेत् ॥
द्विगुणं गंधकं दत्त्वा मर्दयेच्चित्रकांबुना ॥ २८॥
वराटकाश्च संपूर्य टंकणेन निरुद्धय च ॥
भांडे चूर्णं प्रतिलिखेत्क्षिप्त्वा रुंधीत मृन्मये ॥ २९ ॥
शोषयित्वा पुटेद्गर्त्तें वह्निं दत्त्वा पराह्णिके ॥

स्वांगशीतं समुद्धृत्य चूर्णयित्वाथ विन्यसेत् ॥ ३० ॥
एष लोकेश्वरो नाम वीर्यपुष्टिविवर्द्धनः ॥

अर्थ–पारेकी भस्मसे चतुर्थांश सुवर्णकी भस्म ले और पारेसे दूनी गंधक लेकर चीतेके रसमें खरल करे फिर उसे पिट्ठीसे कौडियोंको भरकर सुहागेसे मुख बन्दकरदे कौडियोंको मिट्टी के बासनमें भरकर चूनेसे उसका मुख बन्दकरदे फिर सुखाकर गजपुटमें फूंकदे ठंढा होनेपर निकाल कर चूर्णकरके रखले यह लोकेश्वररस वीर्य और पुष्टिका बढानेवाला है इस रसका अनुमान नीचे लिखीहुई रीतिसे करे ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

तस्यैव सेवनप्रकारमाह ॥

गुंजाचतुष्टयं चास्य पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ ३१ ॥
खादयेत्परया भक्त्या लोकेशः सर्वसिद्धिदः ॥
अङ्गकार्श्येऽग्निमांद्ये च कासपित्ते रसस्त्वयम् ॥ ३२॥
मरिचैर्घृतसंयुक्तैः प्रदातव्यो दिनत्रयम् ॥
लवणं वर्जयेत्तत्र शयीतोत्तानपादतः ॥ ३३ ॥
एकविंशद्दिनं यावन्मरिचं सघृतं पिबेत् ॥
पथ्यं मृगांकवद्देयं शयीतोत्तानपादतः ॥ ३४ ॥

अर्थ–इस रसकी चार रत्तीकी मात्रा अङ्गकी कृशता और मंदाग्निमें देवे और खांसी और पित्तमें कालीमिरच और घीके साथ तीन दिन देवे रोगी इक्कीस दिनतक लवण न खाय और जबतक मिरच घी खाय तबतक पैर सीधे पसारकर सोवे और इसपर पथ्य मृगांकके रसके समान देवे अर्थात् हलके मांसका पथ्य देवे घृतपक्वपदार्थ जिनमें नोंन मिरच खटाई अधिक न पडी होवे बैंगन बेल और तेल करेले न खाय स्त्रीसंसर्ग न करे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इति सेवनविधिः ।

अस्यैव फलानि।

ये शुष्का विषमानिलैः क्षयरुजाव्याप्ताश्च ये कुष्ठिनो
ये पांडुत्वहताः कुवैद्यविधिना ये शोषिणो दुर्भगाः ॥
ये तप्ता विविधैर्ज्वरैर्भ्रममदोन्मादैः प्रमादं गता-
स्ते सर्वे विगतामया हतरुजः स्युः पोटलीसेवया॥३५॥

अर्थ–वातादिक पवनके लगनेसे जो कृश होगये हैं और जो क्षयरोगसे व्याप्त हैं कोढी हैं पीलियाने ग्रस लिया है जिनको वैद्यने त्याग दियाहो शोष होगयाहो विविधज्वरसे पीडितहों जिनको भ्रम मदोन्माद और प्रमाद होगयाहो वे सब इस पोट-लीके सेवनसे नीरोग (विगतामय) होजाते हैं ॥ ३५ ॥

इति लोकेश्वरपोटलीरसः।

अथ राजमृगांकरसः।

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ॥
मृतताम्रस्य भागैकं शिला गंधकतालकम् ॥ ३६ ॥
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥
वराटीः पूरयेत्तेन ह्यजाक्षीरेण टंकणम् ॥ ३७ ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भांडे च निरोधयेत् ॥
शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ॥ ३८ ॥
रसो राजमृगांकोयं चतुर्गुंजः कफापहः ॥
दशभिः पिप्पलीक्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः ॥ ३९ ॥
सघृतैर्दापयेत्क्वाथं वातश्लेष्मोद्भवे क्षये ॥

अर्थ–पारेकी भस्म तीनभाग सोनेकी भस्म १ भाग मरा हुआ तांबा एक भाग और मैनसिल गंधक हरतालके दो दो भाग ले सबको मिला पीली कौडीमें भरे बकरीके दूधमें

सुहागेको रगड कौडीका मुँह बन्दकर मिट्टीके बर्तनमें रखदे सूखनेपर गजपुटकी आगदे ठंढा होनेपर उतारले यह राजमृगांकरस है दश पीपल शहदके साथ चार रत्ती खानेसे कफको दूर करे कालीमिरच और घृतसे वातश्लेष्मासे उत्पन्न क्षयीरोगमें देवे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

इति राजमृगांकरसः ।

अथ रत्नगिरिरसः ।

शुद्धं सूतं समं गंधं मृतं स्वर्णाभ्रताम्रकम् ॥ ४० ॥
प्रत्येकं सूततुल्यं स्यात्सूतार्द्धं मृतलोहकम् ॥
लोहार्द्धं मृतवैक्रान्तं मर्दयेद्भृंगजैर्द्रवैः ॥ ४१ ॥
पर्पटीरसवत्पाच्यं चूर्णितं भावयेत्पृथक् ॥
शिग्रुवासकनिर्गुंडीवचासोमाग्निभृंगजैः ॥ ४२ ॥
क्षुद्रा मुंडीजयंत्योश्च मुनिब्रह्मोत्थचित्रकैः ॥
कन्याद्रावैश्च संभाव्य प्रतिद्रावैस्त्रिधात्रिधा ॥ ४३ ॥
रुद्ध्वा लघुपुटे पाच्यं भूधरे तं समुद्धरेत् ॥

अर्थ–शुद्ध पारा इसीके समान गंधक, स्वर्ण, अभ्रक और तांबेकी भस्म ये सब पारेके समान ले पारेसे आधी लोहेकी भस्म और लोहेसे आधी वैक्रान्तकी भस्म इन सबको भांगरेके रसमें मर्दनकर पर्पटीरसकी तरह पचायकर नीचे लिखी हुई औषधियोंकी पृथक् पृथक् तीन २ भावना दे सहँजना, अडूसा, निर्गुंडी, वच, गिलोय, भांगरा, कटेरी, गोरखमुंडी, अरनी, अगस्तिया, ब्राह्मी, चीता और ग्वारपाठाके रसमें फिर भूधरयंत्रसे लघुपुटकी आग दे उतार ले ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२॥ ४३॥

अस्य सेवनविधिः ।

इमं नवज्वरे दद्यान्माषमात्रं रसस्य तु ॥ ४४ ॥

कृष्णधान्यकसंमिश्रं मुहूर्ताद्विज्वरो भवेत् ॥
अयं रत्नगिरिर्नाम रसो योगस्य वाहकः ॥ ४५ ॥

अर्थ-ठंढा होनेपर उतारकर एक मासे नवीनज्वरमें पीपल और धानियेके साथ दे तो दो घडीमें ज्वर दूर होजाय यह रत्नगिरि नाम रस योगवाही है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

इति रत्नगिरिरसः।

अथ हिंगुलेश्वरो रसः।

तुल्यांशं चूर्णयेत्खल्वे पिप्पलीं हिंगुलं विषम् ॥
द्विगुंजं मधुना देयं वातज्वरनिवृत्तये ॥ ४६ ॥

अर्थ-पीपल, हिंगलू और विष बराबर बराबर लेकर खरल करे वातज्वरकी शान्तिके हेतु इसकी दो रत्ती मात्रा शहदके संग देवे ॥ ४६ ॥

इति हिंगुलेश्वरो रसः।

अथ शीतभंजी रसः ।

पारदं रसकं तालं तुत्थं टंकणगंधकम् ॥
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्या द्रवैर्दिनम् ॥ ४७ ॥
मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत् ॥
अंगुल्यर्धप्रमाणेन पचेत्तात्सिकताह्वये ॥ ४८ ॥
यंत्रे यावत्स्फुटंत्येवं व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः ॥
ततः सुशीतलं ग्राह्यं ताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ ४९ ॥
शीतभंजी रसो नाम चूर्णयेन्मारिचैः समम् ॥
माषैकं पर्णखंडेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् ॥ ५० ॥
त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम् ॥

अर्थ-पारा, खपरिया, हरताल, नीलाथोथा, सुहागा, गंधक, ये सब सिद्ध किये हुए बराबर लेवै इन सबको करे-

लाके रसमें मर्दन करै फिर इसको तांबेके बर्तनमें आधे अंगुलके समान लेपदे फिर वालुयंत्रमें चूल्हेपर रख आग देवे बालूके ऊपर धान रखदे जबतक धानकी खील न हो तबतक आगपर रहनेदे खिलजायँ तब जाने कि, रस बनगया फिर ठंढा होनेपर तांबेके बर्तनसे निकाललें इस शीतभंजीरसमें कालीमिरच मिला ले रसमेंसे पांच रत्ती पानके साथ खानेसे तीन दिनमें विषमज्वर, ऐकाहिक, द्व्याहिक त्र्याहिक और चातुर्थिक ज्वरका नाश होताहै ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

इति शीतभंजीरसः ।

अथ शीतारिरसः ।

सूतकं टंकणं गंधं शुल्बचूर्णं समं समम् ॥ ५१ ॥
सूताद्द्विगुणितं देयं जेपालं तुषवर्जितम् ॥
सैंधवं मरिचं चिंचात्वग्भस्मापि च शर्कराः ॥ ५२ ॥
प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जंबीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥
द्विगुंजं तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ५३ ॥
रसः शीतारिनामायं शीतज्वरहरः परः ॥

अर्थ–पारा, गंधक, सुहागा और तांबेकी भस्म सब समान ले और पारेसे दूना विनाछिलकेका जमालगोटा, सेंधानोन, कालीमिरच, इमलीकी छालकी भस्म और मिश्री ये सब पारेकी बराबर ले जंभीरीके रसमें एक दिन खरल करे फिर दो दो रत्तीकी गोली बनावै गर्मपानीके साथ खानेसे वातज्वर और कफज्वरको दूरकरे यह शीतारिनाम रस शीतज्वरके लिये तो एकही औषधि है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

इति शीतारिरसः ।

अथ ज्वरराजरसः ।

भागैकं रसराजस्य भागस्यार्द्धेन माक्षिका ॥ ५४ ॥

भागद्वयं शिलायाश्च गंधकस्य त्रयो मताः ॥
तालकाष्टादश भागाः शुल्वस्य भागपंचकम् ॥ ५५ ॥
भल्लातकत्रयो भागाः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥
वज्रीक्षीरप्लुतं कृत्वा दृढे मृन्मयभाजने ॥ ५६ ॥
विधाय सुदृढं मुद्रां पचेद्यामचतुष्टयम् ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य मर्दयेत्सुदृढं पुनः ॥ ५७ ॥
गुंजाचतुष्टयं चास्य पर्णखंडेन दापयेत् ॥
ज्वरराजः प्रसिद्धोऽयमष्टज्वरविनाशकः ॥ ५८ ॥
प्रातःकाले प्रभुज्यैनं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ॥
भागेन तुत्थसंयुक्तं चातुर्थिकनिवारणम् ॥ ५९ ॥

अर्थ-पारा एकतोला सोनामक्खीकी भस्म ६ मासे मैनशिल दो तोले गंधक तीन तोले हरताल १८ तोले और तांबेकी भस्म५तोले और शुद्ध कियेहुए भिलाये तीन तोले इन सबको थूहरके दूधमें खरल कर मिट्टीके पात्रमें रख इसका मुख मजबूत बन्दकरे फिर चार पहरतक तीव्र अग्निसे पचावे स्वाङ्गशीतल होनेपर उतारकर फिर खरल करे इसकी ४ रत्तीकी मात्रा पानके साथ देवे यह ज्वरराजरस आठ प्रकारके ज्वरोंको नाश करता है इसकी मात्रा प्रातःकाल ले छाँछ और भात इसपर हित है इसमें नीलाथोथा मिलाकर देनेसे यह चौथिया ज्वरको खोता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

इति ज्वरराजरसः ।

अथापरः शीतभंजी रसः ।

रसहिंगुलगंधं च जेपालं च त्रिभिः समम् ॥
दंतीक्वाथेन संमर्द्य रसो ज्वरहरः स्मृतः ॥ ६० ॥

आर्द्रकस्य रसेनाथ दापयेद्रत्तिकाद्वयम् ॥
नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्यामामात्रतः ॥ ६१ ॥
शर्करा दधिभक्तं च पथ्यं देयं प्रयत्नतः ॥
शीततोयं पिबेच्चानु इक्षुमुद्गरसो हितः ॥ ६२ ॥
शीतभंजी रसो नाम्ना सर्वज्वरविनाशकः ॥

अर्थ–शुद्ध कियेहुए पारा, हिंगलू, गंधक और जमालगोटा तीनोंको बराबर लेकर दंतीके काढेमें खूब खरलकरे अदरखके रसमें दो रत्ती देनेसे नवीन महाघोरज्वरको पहरभरमें खोदेता है इसपर दही भात और बूरेका पथ्य देवे इसके ऊपर ठंढा पानी पीवे ईख और मूंगका पानी भी हितकारक है यह शीतभंजी रस सब ज्वरोंका नाश करनेवाला है॥६०॥६१॥६२॥

इति अपरः शीतभंजी रसः ।

अथ महाज्वरांकुशः ।

सूतं गंधं विषं तुल्यं धूर्तबीजं त्रिभिः समम् ॥ ६३ ॥
तच्चूर्णाद्द्विगुणं व्योषचूर्णं गुंजाद्वयं हितम् ॥
जंबीरकस्य मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतः ॥ ६४ ॥
महाज्वरांकुशो नाम ज्वराष्टकनिकृंतनः ॥
एकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम् ॥ ६५ ॥
विषमं च त्रिदोषोत्थं हंति सर्वं न संशयः ॥
व्यायामं च व्यवायं च स्नानं चंक्रमणं तथा ॥ ६६ ॥
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान्भवेत् ॥

अर्थ–शुद्धकिया हुआ पारा, गंधक और विष ले तीनोंके बराबर धतूरेका बीज और सबसे दुगुनी त्रिकुटा अर्थात् (सोंठ मिरच पीपल) लेकर सबको खरल करे इसकी दो रत्तीकी मात्रा जंभीरी अथवा अदरखके रसमें देनेसे सबप्रकारके

ज्वर एकाँतरा, द्व्याहिक, तिजारी, चौथिया, त्रिदोषसे उत्पन्न विषमज्वरको नाश करता है ज्वर हटनेपर जबतक देहमें बल न आवे तबतक कसरत, कुस्ती, स्नान, टहलना ये बातें न करे ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

इति महाज्वरांकुशो रसः।

अथ प्राणेश्वरो रसः।

शुद्धसूतं तथा गंधं मृताभ्रं विषसंयुतम् ॥ ६७ ॥
समं तन्मर्दयेत्तालमूलीनीरैस्त्र्यहं बुधः ॥
पूरयेत्कुपिकां तेन मुद्रायित्वा विशोषयेत् ॥ ६८ ॥
सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वाथ शोषयेत् ॥
पुटेत्कुंभप्रमाणेन स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ ६९ ॥
गृहीत्वा कुपिकामध्यान्मर्दयेच्च दिनं ततः ॥
अजाजी चित्रकं हिंगु स्वर्जिका टंकणं च यत् ॥ ७० ॥
गुग्गुलुः पंच लवणं यवक्षारो यवानिका ॥
मरिचं पिप्पली चैव प्रत्येकं च समानतः ॥ ७१ ॥
एषां कषायेण पुनर्भावयेत्सप्तधाऽऽतपे ॥
नागवल्लीदलयुतः पंचगुंजो रसेश्वरः ॥ ७२ ॥

अर्थ-शुद्ध कियाहुआ पारा और शुद्ध गंधक अभ्रककी भस्म और सेंगिया विष इन सबको बराबर लेकर मुसलीके रसमें तीन दिनतक खरल करे फिर कांचकी शीशीमें भरकर उसका मुंह बन्द करके सात कपडमिट्टी करे फिर सुखायकर कुंभपुटकी आग दे ठंढा होनेपर शीशीको निकालकर फोड लेवे फिर रस निकालकर एकदिन खरल करे जीरा, चीता, हींग, सज्जी, सुहागा, गूगल, पांचोंनोंन, जवाखार, अजमायन, मिरच और पीपल ये सब औषधी बराबर लेकर इनके काढेमें उस रसको

सात भावनादे इसकी मात्रा पांच रत्ती नागरपानके रसमें लेवे तौ नीचे लिखेहुए गुण करे ॥६७॥६८॥६९॥७०॥७१॥७२॥

अस्यैव सेवनविधिमाह ।

दद्यान्नवज्वरे तीव्रे सोष्णं वारि पिबेदनु ॥
प्राणेश्वरो रसो नाम सन्निपातप्रकोपनुत् ॥ ७३ ॥
शीतज्वरे दाहपूर्वे गुल्मे शूले त्रिदोषजे ॥
वांछितं भोजनं दद्यात्कुर्य्याच्चन्दनलेपनम् ॥ ७४ ॥
तापोद्रेकस्य शमनं बालाभाषणगायनैः ॥
प्रभवेन्नात्र संदेहः स्वास्थ्यं च लभते नरः ॥ ७५ ॥

अर्थ–नवीन ज्वरमें इस रसको पानके रसमें देवे ऊपरसे गर्मजल पीवे यह प्राणेश्वररस सब प्रकारके सन्निपातको दूरकरनेवाला है दाहपूर्वक शीतज्वरमें गुल्ममें त्रिदोषसे उत्पन्न हुए शूलमें देवे रोगीकी इच्छाके अनुसार भोजन देवे और शरीरमें चन्दन लगावे बालकोंकी मीठी बातें सुनना और गान ज्वरके वेगमें शांतिदायक है और शरीरमें इस औषधिसे चैन होवे॥७३॥७४॥७५॥

इति प्राणेश्वरो रसः ।

अथ नवज्वरेभसिंहः ।

शुद्धं सूतं तथा गंधं लोहं ताम्रं च सीसकम् ॥
मरिचं पिप्पलीं विश्वं समभागानि चूर्णयेत् ॥ ७६ ॥
अर्द्धभागं विषं दत्त्वा मर्दयेद्वासरद्वयम् ॥
शृंगवेरानुपानेन दद्याद्गुंजाद्वयं भिषक् ॥ ७७ ॥
नवज्वरे महाघोरे वाते संग्रहणीगदे ॥
नवज्वरेभसिंहोऽयं सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ७८ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक, मराहुआ लोह, तांबा और सीसा कालीमिरच, पीपल, और सोंठ ये सब एक एक भाग और

आधा भाग विष लेकर दो दिनतक अदरखके रसमें खरल करे जब इस प्रकार बनजाय तब महाघोर नवीनज्वरमें इसकी दो रत्तीकी गोली दे, यह बात और संग्रहणीको भी दूर करता है इस रसका नाम नवज्वरेभसिंह है सब रोगोंपर चलता है, वैद्यको उचित है बालक, वृद्ध, तरुण, बलवान्, कमजोर और स्त्रीके अनुसार मात्रा देवे ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

इति नवज्वरेभसिंहः।

अथ पंचाननज्वरांकुशः ॥

शंभोः कंठविभूषणं समरिचं मारारिरक्तं रविः
पक्षौ सागरलोचनं शशियुतं भागोऽर्कसंख्यान्वितम् ॥
खल्वे तं खलु मर्दितं रविजलैर्गुंजैकमात्रं ततः
सिद्धोऽयं ज्वरदंतदर्पदलनः पंचाननाख्यो रसः॥ ७९॥
पथ्यं च देयं दधितक्रभक्तं सिंधूत्थयुक्तं सितया समेतम्॥
गंधानुलेपो हिमतोयपानं दुग्धं च देयं शुभदाडिमं च८०

अर्थ-विष दो भाग, कालीमिरच चार भाग, गंधक दो भाग, सिंगरफ १ भाग, तांबेकी भस्म बारह भाग इन सबको खरलमें डाल आकके दूधमें खरल करे फिर एक २ रत्तीकी गोली बनावे यह रस ज्वररूपहाथीके दांतोंका दर्प तोडनेके लिये सिंहरूप है इसपर दूध दही भात सेंधानमक अथवा मिश्री मिलाकर पथ्य देना चाहिये, चंदनादि सुगंधित वस्तुओंका लेपन ठंढा पानी पीना हित है दूध और अनार भी हितकारकहै ॥ ७९ ॥ ८० ॥

इति पंचाननज्वरांकुशः।

अथ पंचाननरसः ॥

सूतं गंधकचित्रकं त्रिकटुकं मुस्ता विषं त्रैफल-
मेतेभ्यो द्विगुणां गुडेन गुटिकां गुंजाप्रमाणां हरेत् ॥

कुष्टाष्टादशवायुशूलमुदरं शोषप्रमेहादिकं
रोगानीककरीन्द्रदर्पदलने ख्यातो हि पंचाननः ॥८१ ॥

अर्थ–पारा, गंधक, चीतेकी छाल, त्रिकुटा, नागरमोथा और त्रिफला, ये सब समान ले इनसे दूना गुड़ लेकर मर्दन करे एकएक रत्तीकी गोलियाँ बनावे इन अठारह प्रकारके कोढ वायुशूल उदरशोष और प्रमेहको दूर करता है यह पंचानन नाम रस हाथीके समूहरूपी रोगोंके समूहका दर्प दूरकरनेवाला है ॥ ८१ ॥

इति पंचाननरसः ।

अथ मृतसंजीवनी रसः ॥

म्लेच्छस्य भागाश्चत्वारो जेपालस्य त्रयो मताः ॥
द्वौ भागौ टंकणस्यैव भागैकममृतस्य च ॥ ८२ ॥
तत्सर्वं मर्दयेत्सूक्ष्मं शुष्कं यामं भिषग्वरः ॥
शृंगवेरांबुना देयो व्योषचित्रकसैंधवैः ॥ ८३ ॥
गुंजाद्वयमितस्तापं हरत्येष विनिश्चयः ॥

अर्थ–हिंगलू चारभाग, जमालगोटा शुद्ध तीन भाग, सुहागा दो भाग, गिलोय एकभाग, इन सबको पहरभर खूब खरल करै फिर अदरखके रसमें मर्दन करके त्रिकुटा, चीता और सेंधानमक इसमें डाल दे इसकी दो रत्तीकी मात्रा निश्चय तापको दूर करती है ॥ ८२ ॥ ८३ ॥

अस्यैव सेवनप्रकारः ॥

घनसारेण युक्तेन चंदनेन विलेपयेत् ॥ ८४ ॥
विदध्यात्कांस्यपात्रेण जीवयेद्रोगिणं भिषक् ॥
शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेद्बिल्वसंयुतम् ॥ ८५ ॥
सन्निपाते महाघोरे त्रिदोषे विषमज्वरे ॥

आमवाते वातशूले गुल्मे प्लीह्नि जलोदरे ॥ ८६ ॥
शीतपूर्वे दाहपूर्वे विषमे सततज्वरे ॥
अग्निमांद्ये च वाते च प्रयोज्योऽयं रसेश्वरः ॥ ८७ ॥
मृतसंजीवनं नाम ख्यातोऽयं रससागरे ॥ ८८ ॥

अर्थ-कपूर मिलेहुये चन्दनका लेपन करे. पथ्य इसपर बिल्वप्रमाण भात और छांछ देवे. यह रससागरमें लिखा हुआ मृतसंजीवन नाम रसेश्वर-महाघोर सन्निपात, त्रिदोष, विषमज्वर, आमवात, वायु,शूल, गुल्म, तापतिल्ली, जलोदर, शीतपूर्वक और दाहपूर्वक विषमज्वर और निरन्तर ज्वर इन रोगोंका नाश करता है ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

इति मृतसंजीवनरसः ।

अथ रविसुंदरो रसः ।

द्विभागतालेन हतं च ताम्रं रसं च गंधं च समानमाहुः ॥
विषं समं तद्विगुणं च ताम्रं त्रिसप्तवारेण दिवाकरांशौ ८९
विमर्द्य रिष्टस्वरसेन चूर्णं गुंजैकमानं सितया समेतम् ॥
ज्वरांकुशोऽयं रविसुन्दराख्यो ज्वरान्निहन्त्यष्टविधान्समग्रान् ॥ ९० ॥

अर्थ-दो भाग हरताल,मराहुआ तांबा, शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक समान ले और समान ही विष ले विषसे दूनी तांबेकी भस्म ले आकके रसमें इक्कीसबार घोटे और फिर नींबूके रसमें घोटकर एक एक रत्ती की गोली बनावे और मिश्रीके साथ दे तो यह रविसुन्दर नाम रस आठ प्रकारके ज्वरोंको नाश करता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

इति रविसुन्दरो रसः ।

अथ सन्निपातभैरवो रसः ।

ताम्रगंधरसश्वेतस्पंदामरिचपूतनाः ॥
समीनपित्तजेपालास्तुल्या एकत्र मर्दिताः ॥ ९१ ॥

गुंजाचतुष्टयं चास्य नवज्वरहरः परः ॥
ज्वरांकुशः सन्निपातभैरवोऽयं प्रकाशितः ॥ ९२ ॥

अर्थ-तांबेकी भस्म गंधक पारा और श्वेतस्पन्द,काली मिरच, हरड, मछलीका पित्त और शुद्ध कियाहुआ जमालगोटा इन सबको खरल करे इसकी चार रत्तीकी मात्रा नवीनज्वरको दूर करती है यह ज्वरांकुश सन्निपातभैरवरस नामसे प्रसिद्ध है ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

इति सन्निपातभैरवो रसः ।

अथ भस्मेश्वरो रसः ।

भस्मषोडशनिष्कं स्यादारण्योपलकोद्भवम् ॥
निष्कत्रयं च मरिचं विषं निष्कं च पूर्णयेत् ॥ ९३ ॥
अयं भस्मेश्वरो नाम्ना सन्निपातनिकृन्तनः ॥
पंचगुंजामितो भक्षेदार्द्रकस्य रसेन च ॥ ९४ ॥

अर्थ-सोलह निष्क आरने उपलोंकी भस्म और तीन निष्क कालीमिरच और एकनिष्क सींगिया विष इन सबको खरल करे. पांच रत्ती मात्रा अदरखके रसके साथ खाय तो यह भस्मेश्वर नाम रस सन्निपातको दूर करता है ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

इति भस्मेश्वरो रसः ।

अथ प्रतापलंकेश्वरो रसः ।

अपामार्गस्य मूलस्य चूर्णं चित्रकमूलजैः ॥
वल्कलैर्मर्दयित्वा च रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ ९५ ॥
तेन सूतसमं गंधमभ्रकं दारदं विषम् ॥
टंकणं तालकं चैव मर्दयेद्दिनसप्तकम् ॥ ९६ ॥
त्रिदिनं मुशलीकंदैर्भावयेद्धर्मरक्षितम् ॥
मूषां च गोस्तनाकारामापूर्य परिढक्कयेत् ॥ ९७ ॥

सप्तभिर्मृत्तिकावस्त्रैर्वेष्टयित्वा पुटेल्लघु ॥
रसतुल्यं लोहभस्म मृतं वंगरजस्तथा ॥ ९८ ॥
मधूकसारजलदौ रेणुका गुग्गुलुः शिला ॥
चव्यकं च समांशं स्याद्भागार्द्धं शोधितं विषम् ॥ ९९ ॥
तत्सर्वं मर्द्दयेत्खल्वे भावयेद्विपनीरतः ॥
आतपे सप्तधा तीव्रे मर्द्दयेद्घटिकाद्वयम् ॥ १०० ॥
कटुकत्रयकषायेण कनकस्य रसेन च ॥
फलत्रयकषायेण मुनिपुष्परसेन च ॥ १०१ ॥
समुद्रफलनीरेण विजयावारिणा तथा ॥
चित्रकस्य कषायेण ज्वालामुख्या रसेन च ॥ १०२ ॥
प्रत्येकं सप्तधा भाव्यं तद्वत्पिष्टञ्च भावयेत् ॥
सर्वस्य समभागेन विषेण परिधूपयेत् ॥ १०३ ॥
दिनं विमर्दयित्वाऽथ रक्षयेत्कूपिकांतरे ॥
गुंजैकं वह्निनीरेण शृंगवेररसेन वा ॥ १०४ ॥
प्रदद्याद्रोगिणे तीव्रमोहविस्मृतिशांतये ॥
शस्त्रेण तालुमाहत्य मर्द्दयेदार्द्रनीरतः ॥ १०५ ॥
नोद्घटंते यदा दन्तास्तदा कुर्यादमुं विधिम् ॥
सेचयन्मंत्रयित्वाऽथ वारां कुंभशतैर्मुहुः ॥ १०६ ॥
भोजनेच्छा यदा तस्य जायते रोगिणस्तदा ॥
दद्ध्योदनं सितायुक्तं दद्यात्तक्रं सजीरकम् ॥ १०७ ॥
पाने पानं सितायुक्तं यदीच्छति तदा ददेत् ॥
एवं कृते च शांतिः स्यात्तापस्य रसजस्य च ॥ १०८ ॥

अर्थ–ऑंगाकी जड और चीतेकी जडकी छाल दोनोंको पानीमें घोट कर वस्त्रमें छान ले फिर इस रसके समान पारा, गंधक, अभ्रक, हिंगलू, विष, सुहागा, हरताल, सबको मिलाकर सात दिनतक खरल करे फिर तीन दिन मूसलीके रसमें खरल करके धूपमें सुखा ले फिर गौके थनकीसी मूषामें इसको भर ऊपरसे ढकदेवे पीछे सात कपडमिट्टी कर लघुपुटमें फूंक दे पीछे इसमें पारेके समान लोहभस्म वंगभस्म सीसाभस्म मुलहठी नागरमोथा रेणुका गुग्गुल मैनसिल और नागकेशर और आधा-भाग शोधा हुआ विष इन सबको खरल करे फिर सींगिया विषके पानीमें देकर घोट घोटकर दो घडी धूपमें रखदे फिर त्रिकुटाके काढेसे, धतूरेके रससे, त्रिफलाके काढेसे, अगस्तियाके फूलके रससे, समुद्र फेनके रससे, भांगेके रससे चीतेके काढेसे और ज्वालामुखीके रससे, सात सात भावना जुदी जुदी देवे फिर इनको घोट पीस सबके समान विष डालदे फिर इसको कांचकी शीशीमें भरदे और होश्यारीसे रक्खे यह रस एक रत्ती चीते अथवा अदरखके रसमें रोगीकी मूर्छा अथवा विस्मृतिके लिये देवे अथवा रोगीके तलुएको छुरीसे चीरकर अदरखके रससे इसको भरदे. यदि इसपरभी दांत न खुलें तो उसके शिरपर सौ घडे पानीके डाले यदि रोगीको भोजनकी इच्छा होवे तो मिश्री मिला दहीभात अथवा जीरा मिली हुई छांछ देवे पीनेके लिये शरबत जो इच्छा करे तो ऐसे करनेसे ताप और रसकी गर्मी शान्त होती है ॥ ९९–१०८ ॥

अस्यैव सेवनप्रकारः ॥

सचन्द्रचन्दनरसोल्लेपनं कुरु शीतलम् ॥
तूलिकामल्लिकाजातीपुन्नागबकुलावृताम् ॥ १०९ ॥
विधाय शय्यां तत्रस्थं लेपयेच्चन्दनैर्मुहुः ॥
हावभावविलासोक्तिकटाक्षचंचलेक्षणैः ॥ ११० ॥

पीनोत्तुंगकुचोत्पीडैः कामिनीपरिरंभणैः ॥
रम्यवीणानिनादाद्यैर्गायनैः श्रवणामृतैः ॥ १११ ॥
पुण्यश्लोकपुराणानां कथासंभाषणैः शुभैः ॥
एभिः प्रकारैस्तापस्य जायते शमनं परम् ॥ ११२ ॥
वर्जयेन्मैथुनं तावद्यावन्नो बलवान् भवेत् ॥
दद्याद्वातादिरोगेषु सिंधुगुग्गुलवह्निभिः ॥ ११३ ॥
दद्यात्कणामाक्षिकाभ्यां कामलाक्षयपांडुषु ॥
तत्तद्रोगानुपानेन सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ११४ ॥
अयं प्रतापलंकेशः सन्निपातनिकृन्तनः ॥ ११५ ॥

अर्थ–और भी यह काम करे कपूरसहित चन्दन लेपन, मौरसिरी, चमेली और पुन्नागके फूलोंकी सेजकर रोगीको सुवावे और बारबार चन्दन लगाता रहे नवीन हाव, भाव, कटाक्ष, पीनोत्तुंग कुचवाली युवतियोंसे आलिंगन, मधुर वीणा आदि बाजोंकी ध्वनि, दिल बहलावके लिये कथा, पुराण, कहानीका सुनना इन बातोंसे तापका नाश होता है, जबतक बल न आवे तबतक मैथुन न करे वातादिरोगमें सैंधानोन, गूगुल और चीतेके काढेके साथ दे. कामला, क्षय और पीलियामें पीपल और शहदके साथ चटावे जैसा रोग हो उसमें उसी अनुपानके साथ देवे. यह प्रतापलंकेश्वर नाम रस सन्निपातका जीतनेवाला है ॥१०९॥११०॥१११॥११२॥११३॥११४॥११५॥

इति प्रतापलंकेश्वरः ।

अथ महोदधिरसः ।

सूतकं गंधकं लोहं विषं चापि वराटकम् ॥
ताम्रकं वंगभस्माथ अभ्रकं च समांशकम् ॥ ११६ ॥
त्रिकटुं पत्रमुस्तं च विडंगं नागकेशरम् ॥

रेणुकामलकं चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥ ११७ ॥
एषां च द्विगुणो भागो मर्दयित्वा प्रयत्नतः ॥
भावना तत्र दातव्या गजपिप्पलिकांबुना ॥ ११८ ॥
मात्रा चणकमाना तु वटिकेयं प्रकीर्तिता ॥
श्वासं हन्ति तथा कासमर्शांसि च भगन्दरम्॥११९॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कर्णरोगं कपालिकम् ॥
हरेत्संग्रहणीरोगमष्टौ च जाठराणि च ॥
प्रमेहविंशतिं चैव अश्मरीं च चतुर्विधाम् ॥ १२० ॥
नचान्नपाने परिहारमस्ति न शीतवाताध्वनि मैथुने च ॥
यथेष्टचेष्टाभिरतःप्रयोगे नरो भवेत्कांचनराशिगौरः॥१२१॥

अर्थ–शुद्ध पारा, गंधक, लोहा, विष, कौडी, ताम्रभस्म, वंगभस्म और अभ्रक ये सब बराबर लेवे. त्रिकुटा, नागरमोथा, वायविडंग, नागकेशर, रेणुका, आमला, पीपलामूल ये सब दो दो भाग ले इन सबको खरल कर गजपीपलके रसकी तीन भावना देवे चनेकी बराबर गोली बनावे. यह महोदधिरस श्वास, खांसी, बवासीर, भगन्दर, हृदयशूल, पसलीका शूल, कानका दर्द, व कपालके रोगको दूर करता है. संग्रहणी और आठ प्रकारके उदररोगोंको, वीस प्रकारके प्रमेहोंको और चार प्रकारकी पथरीको दूर करता है. इसमें किसी प्रकारके अन्न पानीका परित्याग, मार्गमें शरदी हवा मैथुनकी रोक नहीं है. इच्छाके अनुसार काम करनेपरभी मनुष्यका शरीर सुवर्णसा होजाता है ॥ ११६–१२१ ॥

इति महोदधिरसः।

अथोन्मत्ताख्यो रसः।

रसं च गंधकं चैव धत्तूरफलजैर्द्रवैः ॥
मर्दयेद्दिनमेकं च तुल्यं त्रिकटुकं क्षिपेत् ॥ १२२ ॥

उन्मत्ताख्यरसो नाम सन्निपातनिकृन्तनः ॥
कस्तेन न कृतो धर्मः कां च पूजां न सोऽर्हति ॥ १२३ ॥
सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति देहिनम् ॥

अर्थ-पारा और गंधक समान लेकर धतूरेके फलके रससे एक दिन खरल करे फिर समान सोंठ, मिरच, पीपल, डालदे. यह उन्मत्ताख्य नाम रस सन्निपातका नाशक है. जो मनुष्य सन्निपातरोगसमुद्रमें डूबेहुये मनुष्यको निकालता है उसने सब धर्म करलिये और वही सब प्रकार पूजाके योग्य है ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

इति उन्मत्ताख्यो रसः ।

अथ संज्ञाकरणो रसः ।

वचा रसोनकटुकं सैंधवं बृहतीफलम् ॥ १२४ ॥
रुद्राक्षं मधुसारं च फलं सामुद्रिकामृतम् ॥
समभागानि चैतानि ह्यर्कक्षीरेण भावयेत् ॥ १२५ ॥
भावयेन्मत्स्यपित्तेन त्रिवारं चूर्णयेत्ततः ॥
धमनं कथितं श्रेष्ठं सन्निपाते सुदारुणे ॥ १२६ ॥
कफोल्बणेऽतिवाते च अपस्मारे हलीमके ॥
शिरोरोगे कर्णरोगे नेत्ररोगे विधानतः ॥ १२७ ॥
दापयेद्घ्राणछिद्राभ्यां संज्ञाकरणमुत्तमम् ॥

अर्थ-वच, लहसन, कुटकी, सैंधानमक, बडीकटेरी, रुद्राक्ष, मुलहठी, समन्दरफल और विष ये सब समान भाग ले और आकके दूधकी भावना दे फिर मछलीके पित्तेकी तीन भावना देकर पीसले सन्निपातमें इसका धमन उत्तम है. कफकी अधिकतामें, वातमें, मृगीमें, पीनसमें, शिरके रोगोंमें, कर्णरोगमें,

नेत्ररोगमें, इस उत्तमसंज्ञाकरणरसको नासिकाके छिद्रद्वारा विधिपूर्वक ऊपरको चढावै ॥ १२४ ॥ १२५ ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

इति संज्ञाकरणो रसः ।

अथ चन्द्रशेखरो रसः ।

शुद्धं सूतं समं गंधं मरिचं टंकणं तथा ॥ १२८ ॥
चतुस्तुल्या सिता योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥
त्रिदिनं मर्दयेत्तेन रसोऽयं चन्द्रशेखरः ॥ १२९ ॥
द्विगुंजमार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं पुनः ॥
तक्रभक्तं च वृंताकं पथ्यं तत्र निधापयेत् ॥ १३० ॥

अर्थ–शुद्ध किया हुआ पारा और इसके समान ही शुद्ध कीहुई गंधक और कालीमिरच और सुहागा ले और इन चारोंके बराबर मिश्री मिलाकर मछलीके पित्तमें घोटे. तीन दिन घोटनेसे यह चन्द्रशेखर रस होता है इसकी दो रत्ती अदरखके रसमें दे ऊपरसे ठंढा पानी पिलावे पथ्य छांछऔरभात बैंगनका साग देवे तो तीन दिनमें पित्त और कफज्वरको दूर करे ॥ १२८ ॥ १२९ ॥ १३० ॥

इति चन्द्रशेखरो रसः ।

अथ कनकसुन्दरो रसः ।

हिंगुलं मरिचं गंधं पिप्पलीं टंकणं विषम् ॥ १३१ ॥
कनकस्य च बीजानि समांशं विजयारसैः ॥
मर्दयेद्याममात्रं तु चणमात्रा वटी कृता ॥ १३२ ॥
भक्षणाद्ग्रहणीं हन्याद्रसः कनकसुंदरः ॥
अग्निमांद्यं ज्वरं तीव्रमतिसारं च नाशयेत् ॥ १३३ ॥
दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गव्याजं तक्रमेव च ॥

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहिलाघवम् ॥ १३४ ॥
पथ्यं मधुरपाकित्वान्न च पित्तप्रकोपनम् ॥

अर्थ–हिंगुल, कालीमिरच, गंधक, पीपल, सुहागा, विष और धतूरेके बीज ये सब बराबर लेकर भांगके रसमें पहरभर खरल करे फिर चनाकी बराबर गोलियां बनावे तो यह कनकसुन्दर-रस संग्रहणी मंदाग्नि ज्वर अतीसारका नाश करे पथ्य इसपर दही भात और गौ अथवा बकरीका मट्ठा देवे क्योंकि संग्रहणीरोगवालोंको मट्ठा दीपन है और लघु है और पथ्य मधुर पाकित्व होनेसे पित्तको नहीं बढाताहै ॥१३१॥१३२॥१३३॥१३४॥

इति कनकसुन्दररसः ।

अथ रामबाणरसः ।

सूतकं गंधकं चैव शाणं पाणं च गृह्यते ॥ १३५ ॥
दरदं टंकणं चैव मरिचं च विषं तथा ॥
चत्वारौषधयः सर्वे द्विद्विटंकं च कथ्यते ॥ १३६ ॥
जैपालबीजं संयोज्यं टंकं च दिक्प्रमाणतः ॥
तिंतिडीरससंमर्द्य गुंजामात्रवटी कृता ॥ १३७ ॥
तुलसीपत्रसंयुक्ता सर्वे च विषमज्वराः ॥
एकाहिकं द्व्याहिकं च त्र्याहिकं च चतुर्थकम्॥ १३८॥
शीतदाह्यादिकं सर्वं नाशयति च वेगतः ॥
पथ्यं दुग्धौदनं देयं दधिभक्तं च भोजनम् ॥ १३९ ॥
धन्वन्तरिकृतो योगो निजपुत्रेण हेतुना ॥
रामबाणरसो नाम सर्वरोगप्रणाशकः ॥ १४० ॥

अर्थ–पारा, शाणभर गंधक, तोलेभर सिंगरफ, सुहागा, मिरच, व तेलियामीठा ये चारों दो दो टंक और दशटंक जमालगोटाके बीज ये सब इमलीके रसमें खरल करके रत्ती रत्तीभरकी गोली

बनावे और तुलसीके पत्तोंके संग खानेसे सब प्रकारके विषमज्वर, एकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चौथिया, शीतज्वर, दाहज्वरको तत्काल नाश करदेता है दूध चावल अथवा दही भात पथ्य देवे इस रामबाणका योग धन्वन्तरिने अपने पुत्रके हेतु किया था यह सब रोगोंको नाश करताहै ॥ १३९–१४० ॥

इति रामबाणरसः ।

अथ चन्द्रप्रभा वटी ।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं मृतं स्वर्णं समं समम् ॥
तुल्यं च खदिरं सारं तथा मोचरसं क्षिपेत् ॥ १४१ ॥
द्रवैः शाल्मलिमूलोत्थैर्मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ॥
चणमात्रां वटीं भक्षेन्निष्कैकं जीरकैः सह ॥ १४२ ॥
त्रिदोषोत्थमतीसारं सज्वरं नाशयेद्ध्रुवम् ॥

अर्थ–पारा, तांबा और सुवर्ण इन तीनोंका भस्म लेकर इनके समानही खैरसार और मोचरस लेवे इन सबको सेमरकी जड़के रसमें दो पहर खरल करै फिर चनेकी बराबर गोली बनावे एक गोली तीनमासे जीरेके संग खाय तो ज्वर सहित त्रिदोषका अतीसार दूर होवे ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

इति चन्द्रप्रभावटी ।

अथ चित्रांबररसः ।

शुद्धसूतं मृतं चाभ्रं गंधकं मर्दयेत्समम् ॥ १४३ ॥
लोहपात्रे घृताभ्यक्ते यामं मृद्वग्निना पचेत् ॥
चालयेल्लोहदंडेन ह्यवतार्य्य विभावयेत् ॥ १४४ ॥
त्रिदिनं जीरकैः क्वाथैर्माषैकं भक्षयेन्नरः ॥
रसश्चित्रांबरोनाम ग्रहणीं रक्तसंयुताम् ॥ १४५ ॥
शमयेदनुपानेन आमशूलं प्रवाहिकाम् ॥

अर्थ-शुद्ध पारा, अभ्रकका भस्म और गंधक इन तीनोंको समान लेकर खरल करे फिर घृतसे चुपडे हुये लोहेके पात्रमें मंदी मंदी आगसे सेके और लोहेकी कलछीसे चलाता रहे फिर उतारकर तीन दिन जीरेके काढेसे खरल करे और एक २ मासेकी गोलियां बनावे यह चित्रांबर नाम रस दस्तके साथ रुधिर आवे ऐसी संग्रहणीको, अनुपानके साथ खानेसे आमशूल और प्रवाहिकाको दूर करै ॥ १४३ ॥ १४४ ॥ १४५॥

इति चित्रांबररसः।

अथ ग्रहणीकपाटरसः ।

तारमौक्तिकहेमायःसारश्चैकैकभागिकाः ॥ १४६ ॥
द्विभागो गंधकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेद्दिनम् ॥
कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृंगे ततः क्षिपेत् ॥ १४७ ॥
पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ॥
बलारसैः सप्तधैवमपामार्गरसैस्त्रिधा ॥ १४८ ॥
लोध्रप्रतिविषामुस्ताधातकीन्द्रयवामृताः ॥
प्रत्येकमेषां स्वरसैर्भावनास्यात्त्रिधात्रिधा ॥ १४९ ॥
माषमात्ररसो देयो मधुना मरिचैः सह ॥
हन्यात्सर्वानतीसारान्ग्रहणीं पंचधापि च ॥ १५० ॥
कपाटो ग्रहणीनाम रसोऽयं चाग्निदीपनः ॥

अर्थ-रूपे, मोती, सुवर्ण, व लोहा इन सबकी भस्म एक एक भाग और गंधक शुद्ध दोभाग और पारा तीन भाग दिनभर कैथ के रससे मर्दन करे फिर हिरणके सींगमें भरदे ऊपरसे कपडमिट्टी करके मध्यपुटकी आगमें फूकदे फिर निकालकर बला अर्थात् खरेटीके रसमें सातबार घोटे और ओंगाके रसमें तीनबार घोटे. लोधा, अतीस, नागरमोथा, धाय के फूल

इन्द्रजौ और गिलोय इन सबमेंसे प्रत्येककी तीन २ भावना देवे. इसकी एक मासेकी मात्रा शहद और मिरचके संग देनेसे सब प्रकारके अतीसार और पांच प्रकारकी संग्रहणीको दूर करता है यह रस ग्रहणीकपाट नाम जठराग्निको प्रज्वलित करनेवाला है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥ १४८ ॥ १४९ ॥ १५० ॥

इति ग्रहणीकपाटरसः।

अथ वज्रकपाटरसः।

मृतसूताभ्रकं गंधं यवक्षारं सटंकणम् ॥ १५१ ॥
अग्निमंथं वचां कुर्य्यात्सूततुल्यामिमां सुधीः ॥
ततो जयंतीजंबीरभृंगद्रावैर्विमर्दयेत् ॥ १५२ ॥
त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत् ॥
लोहपात्रे च लवणं अधोपरि निधापयेत् ॥ १५३ ॥
अधोवह्निं शनैः कुर्य्याद्यामार्धं च तदुद्धरेत् ॥
रसतुल्यामतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा ॥ १५४ ॥
कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेत्सप्तधा भिषक् ॥
धातकींद्रयवमुस्तालोध्रबिल्वगुडूचिकाः ॥ १५५ ॥
एतद्रसैर्भावयित्वा वारैकं च विशोषयेत् ॥
रसवज्रं कपाटाख्यं माषैकं मधुना लिहेत् ॥ १५६ ॥
वह्निः शुंठी विडंगापि बिल्वं च लवणं समम् ॥
पिबदुष्णाम्बुना चानु सर्वजां ग्रहणीं जयेत् ॥ १५७ ॥

अर्थ–पारेका भस्म, अभ्रककी भस्म, गंधक, जवाखार, सुहागा, अरनी और वच ये सब पारेके समान लेवे इन सबको जंयती, जंभीरी और भांगरेके रसमें तीन दिन खरल करे फिर गोला बनाकर सुखालेवे फिर लोहेके पात्रमें उसको रख ऊपरसे नमक

भरदे फिर आधे पहरतक नीचे मंदी आगसे सेककर उतारले पीछे पारेके समान अतीस डालकर कैथ और भांगके रसकी सात सात भावना देवै फिर धायके फूल, इन्द्रजौ, मोथा, लोध, बेल और गिलोयके रसकी एक एक भावना देकर सुखाले एक एक मासेकी गोलियां बनाकर शहदके संग खाय ऊपरसे चीता, सोंठ, वायविडंग, बेल लवण ये समान लेकर चूर्ण कर गर्मजलके साथ लेवै तो यह वज्रकपाटरस सब प्रकारकी ग्रहणीको शान्त करता है ॥ १५१ ॥ १५२॥१५३॥ १५४ ॥ ॥ १५५ ॥ १५६ ॥ १५७ ॥

इति वज्रग्रहणीकपाटरसः ।

अथ ग्रहणीकपाटः ।

मुक्तासुवर्णं रसगंधटंकणं घनं कपर्दोऽमृततुल्यभागम् ॥
सर्वैः समं शंखकचूर्णयुक्तं खल्वे च भाव्योतिविषाद्रवेण १५८
गोलं च कृत्वा मृतकर्करस्थं संरुध्य चाग्नौ हि पचेद्दिनार्द्धम् ॥
सुस्वांगशीतो रस एष भाव्यो धत्तूरवह्निमुशलीद्रवैश्च १५९॥
लोहस्य पात्रे परिपाचितश्च सिद्धो भवेत्संग्रहणीकपाटः ॥
वातोत्तरायां मरिचाज्ययुक्तःपित्तोत्तरायां मधुपिप्पलीभिः ॥
श्लेष्मोत्तरायां विजयारसेन कटुत्रयेणापि युतो ग्रहण्याम् ॥
क्षये ज्वरेप्यर्शसि विड्विकारे सामातिसारेऽरुचिपीनसेच १६१
मोहे च कृच्छ्रे गतधातुवृद्धौ गुंजाद्वयं चापि महामयघ्नम् १६२

अर्थ–मोती, सुवर्णभस्म, पारा, गंधक, सुहागा, नागरमोथा, विष ये समान ले इन सबके बराबर शंखकी भस्म मिलाकर अतीसके रसकी भावना दे फिर गोला बनाकर मिट्टीके बासनमें रख संपुटकर आधे दिनतक अग्निपर रक्खे ठंढा होनेपर उतारकर धतूरा, चीता और मूसलीके रसकी एक एक भावना देवे फिर लोहेके पात्रमें पचानेसे यह ग्रहणीकपाट

सिद्ध होता है वातजन्य ग्रहणीमें कालीमिरच और घीके साथ देवे पित्तज ग्रहणीमें शहद और पीपलके साथ और कफजन्य ग्रहणीमें भांगके रस अथवा त्रिकुटाके साथ देवे क्षयी, ज्वर, बवासीर, मलके विकार, आमातिसार, अरुचि,पीनस,मोह, कृच्छ्र,धातुक्षीण इन रोगोंमें दो रत्तीकी मात्रा देवे यह रस ऐसे बड़े बड़े रोगोंको दूर करता है ॥ १५८–१६२ ॥

इति ग्रहणीकपाटरसः ।

अथ विजयभैरवरसः ।

सूतकं गंधकं लोहं विषं चित्रकमभ्रकम् ॥
विडंगं रेणुका मुस्ता एला केशरपत्रकम् ॥ १६३ ॥
फलत्रयं त्रिकटुकं शुल्बभस्म तथैव च ॥
एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ १६४ ॥
कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे ॥
सूतायां ग्रहणीमांद्ये शूले पांड्वामये तथा ॥ १६५ ॥
हस्तपादादिरोगेषु गुटिकेयं प्रशस्यते ॥

अर्थ--पारा, गंधक, लोहेका भस्म, विष, चीता, अभ्रकका भस्म, वायविडंग, रेणुका, मोथा, इलायची, केशर, तेजपात, त्रिफला, त्रिकुटा और तांबेका भस्म ये सब समान ले और इन सबसे दूना गुड़ ले खरल करे और दो २ रत्तीकी गोलियां बनावे. ये वटिका खांसी, श्वास, क्षयी, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, प्रसूता स्त्रीकी संग्रहणी, अग्निमंद, शूल, पीलिया और हाथपांवकी पीडामें उत्तम कहीगई है ॥ १६३ ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

इति विजयभैरवरसः ।

अथ आनन्दभैरवो रसः ।

दरदं वत्सनाभं च मरिचं टंकणं कणा ॥ १६६ ॥

चूर्णयेत्समभागेन रसो ह्यानन्दभैरवः ॥
गुंजैकं तु द्विगुंजं वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत् ॥ १६७ ॥
मधुना लेहयेच्चानु कुटजस्य फलत्वचम् ॥
चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषस्यातिसारजित् ॥ १६८ ॥
दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गव्याजं तक्रमेव च ॥
पिपासायां जलं शीतं हिता च विजया निशि ॥१६९॥

अर्थ-हिंगुल,वत्सनाभ विष,कालीमिरच,सुहागा और पीपल सबको बराबर लेकर चूर्ण करे यह आनन्दभैरव रस है. बलाबल देखकर एक रत्ती अथवा दो रत्तीकी मात्रा दे ऊपरसे कुडाकी छाल एकवर्ष शहदके संग चाटे तो त्रिदोषसे उत्पन्न अतिसार नाश होता है. पथ्य दहीभात और गौका बकरीका मट्ठा देवे, प्यास लगनेपर शीतलजल और रातमें भांग हितहै १६६-१६९॥

इति आनन्दभैरवो रसः।

अथ मेघडंबरो रसः।

तंदुलीयजलैः पिष्टं सूततुल्यं च गंधकम् ॥
अंधमूषागतं पक्त्वाभूधरे भस्मतां नयेत् ॥ १७० ॥
दशमूलकषायेण भावयेत्प्रहरद्वयम् ॥
गुंजाद्वयं हरत्याशु हिक्कां कासं ज्वरं तथा ॥ १७१ ॥
अनुपानेन दातव्यो रसोऽयं मेघडंबरः ॥

अर्थ-चौलाईके रसमें पारे और गंधकको समान लेकर खरल करे फिर अंधमूषामें रख भूधरयंत्रद्वारा पचावे फिर दशमूलके काढेमें इसको दो पहरतक खरल करे, इस मेघडंबर नाम रसकी दो२रत्तीकी गोली बनावे यह हिचकी खांसी और ज्वरको अनुपानके साथ देनेसे बहुत शीघ्र दूर करता है १७०।१७१॥

इति मेघडंबरो रसः।

अथ त्रिगुणाख्यो रसः ।

गंधकाद्द्विगुणं सूतं शुद्धं मृद्वग्निना क्षणम् ॥ १७२ ॥
पक्त्वाऽवतार्य्य संचूर्ण्य चूर्णतुल्याभयायुतम् ॥
सप्तगुंजामितं खादेद्वर्द्धयेच्च दिने दिने ॥ १७३ ॥
गुंजैकं च क्रमेणैव यावत्स्यादेकविंशतिः ॥
क्षीराज्यशर्करामिश्रं शाल्यन्नं पथ्यमाचरेत् ॥ १७४ ॥
कंपवातप्रशान्त्यर्थं निर्वाते निवसेत्सदा ॥
त्रिगुणाख्यो रसो नाम्ना त्रिपक्षात्कंपवातनुत् ॥ १७५ ॥

अर्थ–गंधकसे दूना शुद्ध कियाहुआ पारा लेकर थोडीदेर अग्निपर धीरे धीरे पचावे फिर उतारकर इसके बराबर हरडका चूर्ण मिलावे पहिले दिन सात रत्ती खाय फिर एक एक रत्ती प्रतिदिन बढाता रहे (दूसरे दिन ८ तीसरे ९) इसी प्रकार इक्कीस रत्तीतक बढावे. इसपर पथ्य दूध, मक्खन मिश्री और चावलका लेवे और ऐसे मकानमें रहे जिसमें हवा न आवे यह त्रिगुणाख्यरस ४५ दिनमें कंपवातको दूरकरदेता है ॥ १७२ ॥ १७३ ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

इति त्रिगुणाख्यो रसः ।

अथ वातारिरसः ।

सूतहाटकवज्राणि तारं लोहं च माक्षिकम् ॥
तालं नीलांजनं तत्थमब्धिफेनं समांशकम् ॥ १७६ ॥
पंचानां लवणानां च भागमेकं विमर्दयेत् ॥
वज्रक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वा तं भूधरे पुटेत् ॥ १७७ ॥
माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम् ॥
पिप्पलीमूलजं क्वाथं सकृष्णमनुपाययेत् ॥ १७८ ॥

सर्ववातविकारांस्तु निहंत्याक्षेपकादिकान् ॥
रसः सर्वत्र विख्यातो नाम्ना वातरिपुः स्मृतः ॥ १७९ ॥

अर्थ-पारेकी भस्म, हीराकी भस्म, रूपे, लोहे और सोनामक्खीकी भस्म,हरिताल, नीलांजन, नीलाथोथा,समुद्रफेन ये सब समान भाग ले और एक भाग पांचों नौंन लेकर एकदिन थूहरके दूधमें खरल करै फिर भूधरयंत्रद्वारा पचावै एकमासेकी गोली बनावै इस वातारि रसको अद्रकके रसके साथ चाटै ऊपरसे पीपलामूलका काढा पीपल डालके ले यह रस सब वातजन्य विकारोंको और आक्षेपादिकोंको दूर करता है॥१७६॥१७७॥ ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

इति वातारिरसः।

अथ वातगजांकुशरसः।

मृतं लोहं सूतगंधं ताम्रतालकमाक्षिकम् ॥
पथ्यां शृंगीविषं त्र्यूषमग्निमंथं च टंकणम् ॥ १८० ॥
तुल्यं खल्वे दिनं मर्द्य मुंडीनिर्गुंडजैर्द्रवैः ॥
द्विगुंजां वटिकां खादेत्सर्ववातप्रशांतये ॥ १८१ ॥
साध्यासाध्यं निहंत्याशु रसो वातगजांकुशः ॥

अर्थ-मरा हुआ लोहा, मरा हुआ पारा, गंधक, तांबा, हरिताल सोनामक्खी, काकड़ासींगी, विष, त्रिकुटा, अरनी और सुहागा ये सब समान ले गोरखमुंडी और निर्गुंडीके रसमें एकदिन खरलकरे दो दो रत्तीकी गोलियां बनावे. यह वातगजांकुश रस सबप्रकारकी साध्य और असाध्य वातव्याधि खोनेमें वातरूप हाथीकेलिये अंकुशके समान है इसकी एक गोली पीपलके साथ खाय ॥ १८० ॥ १८१ ॥

इति वातगजांकुशो रसः।

अथाम्लपित्तनाशको रसः ।

मृतसूताभ्रलोहानां तुल्यां पथ्यां विचूर्णयेत् ॥ १८२ ॥
माषत्रयं लिहेत्क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये ॥

अर्थ-मारा पारा, अभ्रक, और लोहेकी भस्म ले सबके बराबर हरड लेकर खरल करै-शहद्के साथ तीन मासे चाटनेसे अम्लपित्तकी शान्ति करताहै ॥ १८२ ॥

इत्यम्लपित्तनाशको रसः ।

अथाग्निकुमारो रसः ।

सूतं गंधं च नागानां चूर्णं हंसांघ्रिवारिणा ॥ १८३ ॥
दिनं घर्मे विमर्द्याथ गोलिकां तस्य योजयेत् ॥
काचकूप्यां च संवेष्ट्य तां त्रिभिर्मृत्पुटैर्दृढम् ॥ १८४ ॥
मुखं संरुध्य संशोष्य स्थापयेत्सिकताह्वये ॥
सार्धं दिनं क्रमेणाग्निं ज्वालयेत्तदधस्ततः ॥ १८५ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य षडंशेनामृतं क्षिपेत् ॥
मरिचान्यर्द्धभागेन समं वास्याथ मर्दयेत् ॥ १८६ ॥
अयमग्निकुमाराख्यो रसो मात्रास्य रक्तिका ॥
तांबूलीरससंयुक्तो हन्ति रोगानमूनयम् ॥ १८७ ॥
वातरोगान्क्षयं श्वासं कासं पांडुकफोल्बणम् ॥
अग्निमांद्यं सन्निपातं पथ्यं शाल्यादिकं लघु ॥ १८८ ॥
जलयोगप्रयोगोऽपि शस्तस्तापप्रशांतये ॥

अर्थ-पारे, गंधक और सीसेको हंसपदीके रसमें दिनभर धूपमें रगड़ कर उसकी गोली बनाय काचकी आतिशी पक्की शीशीमें भरदे, ऊपरसे मिट्टीके तीन पुट लगावै मुखको अच्छी तरह

बन्दकरके सुखायके एक घड़ामें वालूभरके बीचमें रखदे फिर ६ पहरतक मंद मध्यम और तेज अग्नि उसके नीचे जलावे फिर ठंढा होनेपर उतारकर छठे हिस्सेका विष डालदे फिर इसके समान अथवा आधी काली मिरच डालकर रगड़ा करे. यही अग्निकुमाररस तयार होता है. पानके रसमें इसकी एक रत्ती की मात्रा भक्षण करीहुई नीचे लिखे रोगोंको नाश करती है. वातरोग, क्षयी, श्वास, कास, पांडुरोग, कफकी अधिकता, अग्निमांद्य, सन्निपातको दूर करता है चांवल आदि हलका पथ्य उत्तम है और तापकी शान्तिको जलका प्रयोग भी ठीक है ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥ १८६ ॥ १८७ ॥ १८८ ॥

इत्यग्निकुमारो रसः।

लीलाविलासो रसः।

रसो रविर्व्योमबलिः सुलोहं धात्र्यक्षनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य ॥
तदल्पघृष्टं मृदुमार्कवेण संमर्दयेदस्य च वल्लयुग्मम् १८९॥
हन्त्यम्लपित्तं मधुनावलीढं लीलाविलासो रसराज एषः ॥
दुग्धं सकूष्मांडरसं सधात्रीफलंशनैस्तत्सहितंभजेद्वा १९०

अर्थ-शुद्धपारा, तांबेकी भस्म, अभ्रक, लोहभस्म व गंधक, इन सबको आंवलेके रसमें तीनदिन खरलकरै फिर भांगरेके रसमें मर्दन कर चार रत्तीकी गोली बनावे शहदके साथ सेवन करनेसे यह लीलाविलास रस अम्लपित्तका नाशकरै है. अथवा दूध वा पेठेके रसके साथ खाय अथवा इस रसको आंवलेके साथ खाना भी उत्तम है ॥ १८९ ॥ १९० ॥

इति लीलाविलासो रसः।

अथ मन्थानभैरवो रसः।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं हिंगुपुष्करमूलकम् ॥
सैंधवं गंधकं तालं टंकणं चूर्णयेत्समम् ॥ १९१ ॥

पुनर्नवादेवदारुनिर्गुंडीतण्डुलीयकैः ॥
तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकं मर्दयेद्दृढम् ॥ १९२ ॥
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रे रसो मंथानभैरवः ॥
कफरोगप्रशान्त्यर्थं निंबक्काथं पिबेदनु ॥ १९३ ॥

अर्थ–पारेकी भस्म, तांबेकी भस्म, हींग, पुहकरमूल, सेंधानोन, गंधक, हरताल, सुहागा बराबर बराबर लेकर–सांठी वन्दाल, निर्गुंडी, चौंलाई, कुटकी, तोरईके रसमें एक २ दिन मर्दन करै फिर इस मंथान भैरव रसको एक मासे शहदमें मिलाकर चाटे ऊपरसे नीमका काढा पीवै तो कफरोग शान्त होय ॥ १९१ ॥ १९२ ॥ १९३ ॥

इति मंथानभैरवो रसः ।

अथ लघ्वग्निकुमारो रसः ।

टंकणं रसगंधौ च समाभागं त्रयो विषम् ॥
कपर्दिकासार्जिकाक्षारमागधीविश्वभेषजम् ॥ १९४ ॥
पृथक् पृथक् कर्षमात्रं त्वष्टभागं मरीचकम् ॥
जम्बीराम्लैर्दिनं पिष्टं भवेदग्निकुमारकः ॥ १९५ ॥
विषूचिशूलवातादिवह्निमांद्यप्रशान्तये ॥

अर्थ–सुहागा, पारा, और गंधक समान भागले और तीन भाग तेलिया मीठा लेवै और कौडी, सज्जीखार पीपल, सोंठ ये चारों एक एक कर्ष लेवे और आठ भाग कालीमिरच, लेवे इन सबको जंभीरी और इमलीके रसमें दिनभर खरल करने से यह अग्निकुमार रस तयार होता है. विषूचिका, शूल, वादीके रोग और मन्दाग्निकी शान्तिके हेतु अत्यन्त उपयोगी है ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

इति लघ्वग्निकुमारो रसः ।

अथ क्रव्यादनामा रसः।

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्याच्छुल्वायसी चार्द्धपलप्रमाणे ॥
संचूर्ण्य सर्वं द्रुतमग्नियोगादेरंडपत्रेषु निवेशनीयम् ॥१९६॥
पिष्ट्वाऽथ तां पर्पटिकां निदध्याल्लोहस्य पात्रे वरपूतमस्मिन् ॥
जंबीरजं पक्वरसं पलानां शतं तलेस्याग्निमथाम्लमात्रम् १९७
जीर्णे रसे भावितमेतदेतैः सपंचकोलोद्भववारिपूरैः ॥
सवेतसाम्लैः शतमत्र योज्यं समं रजष्टंकणजं सुभृष्टम् १९८
विडं तदर्द्धं मरिचं समं च तत्सप्तधार्द्रं चणकाम्लवारा ॥
क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो रसः सुमंथानकभैरवोक्तः १९९
माषद्वयं सैंधवतक्रपीतमेतस्य धन्यैःखलु भोजनान्ते २००
गुरूणि मांसानिपयांसिपिष्टीकृतानिखाद्यानिफलानिवेगात्
नाम्नातिरिक्तान्यपि सेवितानि यामद्वयाज्जारयति प्रसिद्धः ॥

अर्थ–पारा चार तोले, गंधक ८ तोले, तांबेकी भस्म दो तोले, और लोहेकी भस्म दो तोले इन सबको मिलाय खरल करै फिर थोड़ीसी आग देकर अंडीके पात्तोंमें रखदे फिर अच्छे साफ लोहेके पात्रमें रख पर्पटीके सदृश करै फिर इसमें सौ पलकी जंभीरीका रस डालदे नीचे मंदीआग जलावे, इसरसके सूखनेपर फिर पचास पल पंचकोलका काढा और ५० पल अमलतासका काढा डालदे और आठ तोले फूला हुआ सुहागा और चार तोले काचका नोंन और इतनी ही कालीमिरच मिलादे और फिर चनाके खारकी सात भावना देनेसे सुमंथानभैरवका कहा हुआ क्रव्यादनाम रस तयार होता है. दो मासे रस सैंधेनमक और मट्ठेके साथ भोजनके अन्तमें खाय.भारी मांस दूध पिष्ट पदार्थ और खाद्य फल खाय अधिक भोजनको भी यह रस दोपहरमें पचा देताहै ॥ १९६–२०१ ॥

इति क्रव्यादनामा रसः।

अथाऽग्नितुंडा वटी ।

शुद्धं सूतं समं गंधमजमोदाफलत्रयम् ॥
सर्जिक्षारं यवक्षारं वह्निसैंधवजीरकम् ॥ २०२ ॥
सौवर्चलं विडङ्गानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम् ॥
विषंपुष्टं सर्वतुल्यं जंबीराम्लेन मर्दयेत् ॥ २०३ ॥
मरिचाभां वटीं खादेद्वह्निमांद्यप्रशान्तये ॥

अर्थ-शुद्ध पारा और इतनीही गंधक, अजमोद, त्रिफला, सज्जीखार, जवाखार, चीता, सेंधानोंन, जीरा, संचरनोंन, वायविडंग, समुद्रनोंन और त्रिकुटा ये सब समान भाग ले और सबकी बराबर कुचला लेकर सबको जंभीरी और खटाईमें खरल करै कालीमिरचके समान गोली बनाकर खाय तो जठराग्नि को तेज करै यह अग्नितुंडी वटीनाम रस है२०२।२०३

इत्यग्नितुंडीवटी ।

अथ आनन्दोदयरसः ।

पारदं गंधकं लोहमभ्रकं विषमेव च ॥ २०४ ॥
समांसं मरिचं चाष्टौ टंकणं च चतुर्गुणम् ॥
भृंगराजरसैः सप्त भावनाश्चाम्लदाडिमैः ॥ २०५ ॥
गुंजाद्वयं पर्णखंडैर्हन्ति सायं तु भक्षितः ॥
वातश्लेष्मोद्भवान्रोगान्मंदाग्निग्रहणीज्वरान् ॥ २०६ ॥
अरुचिं पांडुतां चैव जयेदाचिरसेवनात् ॥

अर्थ-पारा, गंधक, लोहा, अभ्रक, मीठातेलिया ये सब बराबर बराबर ले अठगुनी मिरच और चौगुना सुहागा इन सबको खरल कर भांगरेके रस और खट्टे अनारके रसकी सात भावना दे इसकी दो रत्ती सायंकाल पानके संग खानेसे बादी

और कफ रोगको, मन्दाग्निको, संग्रहणीको, ज्वरको अरुचिको और पांडुरोगको, शीघ्रही दूर करदेती है ॥ २०४ ॥ ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

इति आनन्दोदयरसः।

अथ महोदधिवटी।

एकैकं विषसूतं च जाती टंकं द्विकं द्विकम् ॥ २०७ ॥
कृष्णात्रिकं विश्वषट्कं दग्धं कपर्दिकाद्विकम् ॥
देवपुष्पं बाणमितं सर्वं संमर्द्य यत्नतः ॥ २०८ ॥
महोदध्याख्यवटिका नष्टस्याग्नेश्च दीपनी ॥

अर्थ-विष और पारा एक एक भाग, जायफल और सुहागा दो दो भाग, पीपल तीन भाग सोंठ छः भाग, और कौडीकी भस्म दो भाग, तथा लौंग पांच भाग, इन सबको घोटले फिर उडदकी बराबर गोली बनावे इसका सेवन नष्ट भई अग्निदीपन करनेवाला है ॥ २०७ ॥ २०८ ॥

इति महोदधिवटी।

अथ चिन्तामणिरसः

रसं गंधं मृतं शुल्बं मृतमभ्रं फलत्रिकम् ॥ २०९ ॥
त्र्यूषणं बीजजैपालं समं खल्वे विमर्दयेत् ॥
द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तद्वस्त्रगालितम् ॥ २१० ॥
चिंतामणिरसोप्येष अजीर्णानां प्रशस्यते ॥
ज्वरमष्टविधं हंति सर्वशूलेषु शस्यते ॥ २११ ॥
गुंजैको वा द्विगुंजो वा आमरोगहरः परः ॥

अर्थ-पारा, गंधक, तांबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल, जमालगोटाके सूंघे हुये बीज, इन सबको बराबर लेकर द्रोणपुष्पीके रससे खरलकरे फिर कपडेमें

छाने इसकी एक या दोरत्तीकी गोली बनावे यह चिन्तामणि रस अजीर्णमें हितकारक है आठ प्रकारके ज्वर तथा सब प्रकारके शूलको खोवे और आमरोगमें तो यह अद्वितीय रस है ॥ २०९ ॥ २१० ॥ २११ ॥

इति चिन्तामणिरसः ।

अथ राजवल्लभरसः ।

रसनिष्कैकगंधैकं निष्कमात्रः प्रदीपनः ॥ २१२ ॥
सार्द्धं पलं प्रदातव्यं चूलिकालवणं भिषक् ॥
खल्वे संमर्दयेत्तत्तु शुष्कवस्त्रेण गालयेत् ॥ २१३ ॥
माषमात्रं प्रदातव्यो भुक्तमांसादिजारकः ॥
अजीर्णेषु त्रिदोषेषु देयोऽयं राजवल्लभः ॥ २१४ ॥

अर्थ—पारा ४ मासे, गंधक ४ मासे, विष ४ मासे और नौसादर ६ तोला इन सबको ले कूट पीस कपडछानकर एक एक मासेकी गोली बनावे. यह राजवल्लभरस खाये हुए मांसको भस्म करताहै अजीर्ण और त्रिदोषमें यह देना चाहिये ॥ २१२ ॥ २१३ ॥ २१४ ॥

इति राजवल्लभरसः ।

अथ त्रिनेत्राख्यो रसः ।

टंकणं हारिणं शृंगं स्वर्णं शुल्बं मृतं रसम् ॥
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्य रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ २१५ ॥
त्रिनेत्राख्यो रसो नाम्ना माषैकं मधुसर्पिषा ॥
सैंधवं जीरकं हिंगुमध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ॥ २१६ ॥
पंक्तिशूलहरं ख्यातं याममात्रान्न संशयः ॥

अर्थ—सुहागा, हिरणका सींग, सोना, तांबा और पारेकी भस्म दिनभर अदरखके रसमें खरलकरे फिर शरावसंपुटमें

रख फूंकदे फिर एक मासे शहद और घीके साथ खावे ऊपरसे सेंधानमक, जीरा, हींग, शहद और घी मिलाकर चाटै यह त्रिनेत्राख्यरस पहर भरमें शूलका नाश करता है॥२१५॥२१६॥

इति त्रिनेत्राख्यो रसः ।

अथ मेहवज्रो रसः ।

भस्म सूतं मृतं कांतं शुल्बभस्म शिलाजतु ॥ २१७ ॥
शुद्धताप्यं शिला व्योषं त्रिफला कोह्लबीजकम् ॥
कापित्थरजनीचूर्णं भृंगराजेन भावयेत् ॥ २१८ ॥
विंशद्वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा॥
निष्कमात्रं लिहेन्मेही मेहवज्रो महारसः ॥ २१९ ॥
महानिम्बस्य बीजानि पिष्ट्वा कर्षमितानि च ॥
पलं तण्डुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ॥ २२० ॥
एकीकृत्य पिबेत्तोयं हन्ति मेहं चिरन्तनम् ॥

अर्थ-पारेकी भस्म कांतलोहकी भस्म, तांबेकी भस्म, शिलाजीत, सुवर्णमक्खीकी भस्म, मनशिला, त्रिकुटा, त्रिफला, अंकोलके बीज, कैथ, हलदीका चूर्ण ये सब बराबर लेकर भांगरेके रसमें बीसबार भावना दे इस मेहवज्र रसको चार मासे शहदके संग चाटै ऊपरसे बकायनके बीज एककर्ष पीसकर ४ तोले चावलके पानी और आठ मासे घीके साथ मिलाहुआ पानी पीनेसे प्राचीन प्रमेहका नाश करता है ॥ २१७-२२० ॥

इति मेहवज्रो रसः ।

अथ इन्द्रवटीरसः ।

मृतं सूतं मृतं वंगमर्जुनस्य त्वचा सिता ॥ २२१ ॥
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे शाल्मल्या मर्दयेद्द्रवैः ॥

दिनान्ते वटिका कार्या माषमात्रा प्रमेहहा ॥ २२२ ॥
एषा इन्द्रवटी नाम्ना मधुमेहप्रशान्तये ॥

अर्थ-पारे और रांगकी भस्म, कोहकी अथवा अर्जुनकी छाल मिश्री ये सब बराबर ले सेमरकी जडके रससे खरल-कर सायंकालको एक मासेकी गोली बनाकर खावे यह इन्द्रवटी गोली मधुमेहको नाश करनेवाली है ॥ २२१ ॥ २२२ ॥

इति इन्द्रवटीरसः ।

अथ रसेन्द्रमंगलरसः ।

तालसत्त्वं मृतं ताम्रं मृतं लोहं मृतं रसम् ॥ २२३ ॥
हतमभ्रं हतं तारं गंधं तुत्थं मनःशिला ॥
सौवीरांजनकासीसं नीलभल्लातकानि च ॥ २२४ ॥
शिलाजत्वर्कमूलं तु कदलीकंदचित्रकम् ॥
त्वचमंकोलजां कृष्णां कृष्णधत्तूरमूलकम् ॥ २२५ ॥
अवल्गुजानि बीजानि गौरीमाध्वीफलानि च ॥
हेमाह्वां फेनजात्यां च फलिनीं विषतिंदुकाम् ॥ २२६ ॥
तैलिन्यो लोहकिट्टं च पुराणममृतं च तत् ॥
त्वचा च मीनकाक्षस्य पुनरुक्तं फलं पृथक् ॥ २२७ ॥
तैलिन्यो वटकास्तासु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥
खल्वे निधाय दातव्या पुनरेषा च भावना ॥ २२८ ॥
ब्रह्मदण्डी शिखापुंखा देवदाली च नीलिका ॥
वानशोना नृपतरुर्निंबसारो विभीतकः ॥ २२९ ॥
करंजो भृंगराजश्च गायत्री तिंतडीफलम् ॥
मलयूमूलमेतेषां तिस्रस्तिस्रस्तु भावनाः ॥ २३० ॥
दातव्या कुप्पिकां कृत्वा सम्यक् संशोष्य चातपे ॥

भांडे तद्धारयेद्भांडं मुद्रितं चाथ कारयेत् ॥ २३१ ॥
यामं मन्दाग्निना पच्यात्पुटमध्ये ह्यसौ रसः ॥
पुंडरीकं निहन्त्येव नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २३२ ॥
द्विमासाभ्यंतरे पुंसामपथ्यं न तु भोजयेत् ॥
रोगाः सर्वे विलीयंते कुष्टानि सकलानि च ॥ २३३ ॥
भानुभक्तिप्रवृत्तानां गुरुभक्तिकृतां सदा ॥
रसेन्द्रमंगलो नाम्ना रसोऽयम्प्रकटीकृतः ॥ २३४ ॥
अनुग्रहाय भक्तानां शिवेन करुणात्मना ॥

अर्थ–हरतालसत्त्व, तांबेकी भस्म, लोहभस्म, पारेकी भस्म, अभ्रक भस्म, रूपेकी भस्म, गंधक, नीलाथोथा, मनशिल, सहँजना, कसीस, नीलीभलाये, शिलाजीत, आँककीजड, कदलीकन्द, चीता, दालचीनी, अंकोल, कालेधतूरेकी जड, चिरमिठी, तुलसी, महुआके फल, चोकफेन, जाती, फलिनी, विषतिन्दू, तेलिया, कीटी (पुराणी जिसकी भस्म न हुईहो) मछेछीकी छाल इन सबको इकट्ठी करके खरलकरे फिर ब्रह्मदंडी सरफोंका, बंदाल, नीलिका, वा नशोत, अमलतासका गूदा, नीमसार, बहेडा, कंजा, भांगरा, खैर, इमलीके कटारे, इनकी भावना दे फिर एक हँडियामें भरके उस हँडियाको हँडियामें रख दे और मुंहपै कपडमिट्टी करदे और पहरभरतक अग्निदे तो यह रस पुंडरीक कोढको आराम करता है दो महीनेतक पथ्यसे रहै सम्पूर्ण रोग सब प्रकारके कोढ दूर होजाते हैं सूर्यके भक्तों और गुरुसेवकोंके हेतु शिवजीने कृपाकरके रसेन्द्रमंगल नाम यह रस प्रकट कियाहै ॥ २२३–२३४ ॥

इति रसेन्द्रमंगलो रसः ।

अथ सर्वेश्वरो रसः ।

मृतताम्राभ्रलोहानां हिंगुलं च पलंपलम् ॥ २३५ ॥

जंवीरोन्मत्तभार्ङ्गीभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ॥
मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकं च दिनंदिनम् ॥ २३६ ॥
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ॥
वालुकायंत्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना ॥ २३७ ॥
आदाय चूर्णयेत्सर्वं पलैकं योजयेद्विषम् ॥
द्विपलं पिप्पलीचूर्णमिश्रं सर्वेश्वरं रसम् ॥ २३८ ॥
द्विगुंजं लेहयेत्क्षौद्रैः मुनिमण्डलकुष्ठनुत् ॥
बाकुची चैव दारू च कर्षमात्रं विचूर्णितम् ॥ २३९ ॥
लिहेदेरण्डतैलेन ह्यनुपानं सुखावहम् ॥
रक्ताधिक्ये शिरामोक्षः पादे बाहौ ललाटके ॥ २४० ॥
कर्तव्यो दृष्टिरोगेषु कुष्ठिनां च विशेषतः ॥
बलिनो बहुदोषस्य वयस्थस्य शरीरिणः ॥ २४१ ॥
एतत्प्रमाणामिच्छन्ति प्रस्थं शोणितमोक्षणे ॥
व्यभ्रे वर्षासु विद्यात्तु ग्रीष्मकाले तु शीतले ॥ २४२ ॥
हेमन्तकाले मध्याह्ने शस्त्रकालास्त्रयः स्मृताः ॥

अर्थ–मरा हुआ तांबा, अभ्रक, लोह और सिंगरफ चारों एक एक पल को जंभीरी, धतूरा, भारंगी, सेहुंड, आक, पोस्तके डोढा और कनेर इन सबके रसमें एक एक दिन मर्दन करे ऐसे सात दिन पीछे गोला बनाय उसके चारों ओर वस्त्र लपेट वालुकायंत्रद्वारा तीन दिन तक मन्दीमन्दी आगसे स्वेदन करे फिर दो पल पीपलका चूर्ण मिला देनेसे यह सर्वेश्वररस तयार होता है इसकी दो रत्ती शहदके साथ चाटनेसे कोढके चकत्तोंको आराम करता है और बाकुची और देवदारु कर्षभर अंडीके तेलके साथ चाटे, रक्तकी अधिकतामें, पांव, बाहु अथवा लला

टमें फसद लगाकर खून निकालदे आंखकी बीमारीवालोंके यह काम करे, बलवान् बहुतदोषोंकरके युक्त, जवान मनुष्योंके प्रस्थभर रुधिर निकालदे बादल न होय जब तो वर्षाऋतुमें ठंडके समय गरमीमें हेमन्तमें दुपहरके समय नस्तर लगवावे २३५-२४२

इति सर्वेश्वरोरसः ।

अथ तालेश्वरो रसः ।

द्वादशं कर्षतालं च कूष्मांडस्वरसे क्षिपेत् ॥ २४३ ॥
स्वेदयेद्दोलकायंत्रे यावत्तोयं न विद्यते ॥
पश्चात्तं मेलयेत्खल्वे सूतं कर्षद्वयं क्षिपेत् ॥ २४४ ॥
तन्मर्द्यं बहुवाराणि नीलाभा कज्जली भवेत् ॥
स्नुहीक्षीरं रविक्षीरं झागीक्षीरं च बाकुची ॥ २४५ ॥
पातालगरुडी कोह्ना चक्रमर्दकहिज्जलम् ॥
कुमारीपत्रभल्लाता त्रिफला तु पुनर्नवा ॥ २४६ ॥
निंबत्वचं महौषध्या पुटं देयं त्रयं त्रयम् ॥
षट्कर्ष चूककलिकां हंडिकायां तु धापयेत् ॥ २४७ ॥
चतुर्थांशमधः स्थाप्य मध्ये स्थाप्यं तु तालकम् ॥
पश्चादुपरि चूर्णं तत्सर्वं स्थाप्यं प्रयत्नतः ॥ २४८ ॥
हंडिकाखंडपर्य्यन्तं मज्जानं कन्यकोद्भवम् ॥
ततो मुद्रां दृढं कुर्य्यादूर्ध्वास्यं योषितां किल ॥ २४९ ॥
चतुर्यामं तु दीपाग्निं विद्याद्यामं हताग्निना ॥
स्वांगशीतलमुद्धृत्य भवेत्तालेश्वरो रसः ॥ २५० ॥
पथ्यं मुद्गं तु शाल्यन्नं कुष्ठानष्टादशाञ्जयेत् ॥

अर्थ–बारह कर्ष हरितालको पेठेके रसमें डालकर दोला-

यन्त्रद्वारा स्वेदनकरे जबतक पानी न रहे फिर दो कर्ष पारा डालकर खरल करे यहांतक कि,नीले रंगकी कजली तयार हो जाय फिर सेहुंडका दूध, आकका दूध, बकरीका दूध, बाकुची छिरहटा,कोल्हा, चकवड, समुद्रफल, ग्वारपाठा, भिलाये, त्रिफला,सांठकी जड,नीमकी छाल और सोंठ इनकी तीन तीन भावना दे छः कर्ष चूककी लुगदी हंडियामें भरे बीचमें हरिताऌको रखदे फिर हांडीके गलेतक ग्वारपाठेका गूदा भरदे फिर कपडमिट्टीकर सुखायले फिर चार पहर तेज आग और पहरभर मन्दी आगदे ठंडा होनेपर उतारले यह जो तालेश्वररस है कोढको दूर करता है इसपर मूंग और चांवलका पथ्य करनेसे अठारह प्रकारके कोढोंको दूर करता है ॥ २४३–२५० ॥

इति तालेश्वरो रसः ।

अथ स्वर्णक्षीरीरसः ।

हेमाह्वां पंचपलिकां क्षिप्त्वा तक्रघटे पचेत् ॥ २५१ ॥
क्षीरे जीर्णे समुद्धृत्य पुनः क्षीरघटे पचेत् ॥
तक्रे जीर्णे समुद्धृत्य क्षालयित्वा विशोषयेत् ॥ २५२ ॥
चूर्णितं तत्पंचपलं मरिचानां पलद्वयम् ॥
पलैकं मूर्च्छितं सूतमेकीकृत्वा च भक्षयेत् ॥ २५३ ॥
निष्कैकं सुप्तिकुष्ठारिः स्वर्णक्षीरीरसो ह्ययम् ॥

अर्थ–पांचपल धतूरेक बीज मट्ठेके घडेमें डालदे मट्ठेके सूखनेपर निकालकर दूधमें डालदे दूध कम होजानेपर निकालकर सुखाले उसमें दो पल कालीमिरच और एक पल मराहुआ पारा डालकर मर्दन करले इसकी एकनिष्ककी मात्रा सुप्ति कुष्ठको दूर करती है ॥ २५१ ॥ २५२ ॥ २५३ ॥

इति स्वर्णक्षीरी रसः ।

अथ शूलगजकेशरीरसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं यामैकं मर्दयेद्दृढम् ॥ २५४ ॥

द्वयोस्तुल्यं भस्मताम्रं संपुटे तं निरोधयेत् ॥
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भांडे धारयेद्भिषक् ॥ २५५ ॥
ततो गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥
संपुटं चूर्णयेत्सूक्ष्मं पर्णखंडे द्विगुंजके ॥ २५६ ॥
भक्षयेच्छूलपीडार्थं हिंगुशुण्ठीसजीरकम् ॥
वचामरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत् ॥ २५७ ॥
असाध्यं साधयेच्छूलं रसः स्याच्छूलकेसरी ॥
व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकानि च ॥ २५८ ॥
वेगरोधं शुक्ररोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥

अर्थ–शुद्ध पारा एक भाग, गंधक दोभाग, इनकी पहरभर कजली करे और तांबेकी भस्म दोनोंके समान लेकर सराव-संपुटकर ऊपर नीचे नमक रखकर मिट्टीके बर्तनमें रखदेवे फिर गजपुटकी आगमे पचावे ठंडा होनेपर उतारकर रखले इसकी दो रत्तीकी मात्रा पानके संग खावे ऊपरसे हींग, सोंठ जीरा, वच, कालीमिरचका चूर्ण बना गरम जलके साथ पीवे तो यह असाध्यशूलरूप हाथीके लिये सिंहरूप रस वशमें लानेवाला है, कसरत, कुश्ती, मैथुन, मद,लवण, मिरचादि कडवी वस्तु, दस्तके वेगको रोकना, वीर्य अवरोध, इनको शूलवान् मनुष्य त्यागदे ॥ २५४–२५८ ॥

इति शूलगजकेशरी रसः ।

अथ द्वितीयतालेश्वरो रसः ।

सूतो द्वौ वल्गुजा त्रीणि कणा विश्वा त्रिकंत्रिकम् २५९ ॥
सार्द्धैकं ब्रह्मपुत्रस्य मरिचस्य चतुष्टयम् ॥
एकैकं निम्बधत्तूरबीजतो गंधकत्रयम् ॥ २६० ॥
जातीटंकणतालाया भागा दश दश स्मृताः ॥

युक्त्या सर्वं विमर्द्याथामृतास्वरसभाविता ॥ २६१ ॥
सप्तधा शोषयित्वाथ धत्तूरस्यैव दापयेत् ॥
संमर्द्य गोलकं सार्द्रं धात्तूरैर्वेष्टयेद्दलैः ॥ २६२ ॥
गोमये वेष्टयेत्तच्चकुक्कुटाख्यपुटे पचेत् ॥
रसः कुष्टहरः सेव्यः सर्वदा भोजनप्रियैः ॥ २६३ ॥

अर्थ-दो भाग पारा तीन भाग वल्गुजा, और तीन तीन भाग पीपल, और सोंठ, डेढ भाग ब्रह्मपुत्र, चार भाग मिरच, एक एक भाग नीम और धतूरेके बीज, गंधक३ भाग, जावित्री, सुहागा हरताल ये तीनों दश दश भाग लेकर इन सबको खरल करे फिर गिलोयके रसकी भावना देकर सातवार सुखाले फिर धतूरेके रसकी भावना दे फिर अदरखके रसमें मर्दनकर गोला बनाय ऊपरसे धतूरेके पत्ते लपेटदे ऊपर गोबर लपेटदे फिर कुकुटयंत्रमें पकानेसे यह कोढ दूर करनेवाला रस बनता है ॥ २५९-२६३ ॥

इति द्वितीयतालेश्वरो रसः ।

अथ ब्रह्मरसः ।

भागैकं मूर्च्छितं सूतं गंधकं वह्निवाकुची ॥
चूर्णं च ब्रह्मबीजानां प्रतिद्वादशभागकम् ॥ २६४ ॥
त्रिंशद्भागं गुडस्यापि क्षौद्रेण गुटिकां कृताम् ॥
अयं ब्रह्मरसो नाम्ना ब्रह्महत्याविनाशनः ॥ २६५ ॥
द्विनिष्कभक्षणाद्धन्ति प्रसुप्तिं कुष्ठमंडलम् ॥
पातालगरुडीमूलं जले पिष्ट्वा पिबेदनु ॥ २६६ ॥

अर्थ-एक भाग पारेकी भस्म और गंधक, चीता, बावची और ढाकके बीज प्रत्येक बारह बारह भाग और गुड तीस भाग ऊपरवाली सब औषधियोंको कूट छान गुड मिलाय

शहदके संग गोली बनावे यह ब्रह्मरस ब्रह्महत्यासे उत्पन्न रोग का नाश करता है दो निष्क अर्थात आठमासे खानेसे प्रसुप्त कुष्ठमंडलका नाश करे ऊपरसे कडवी घीयाकी जडका शरबत पीवे ॥ २६४ ॥ २६५ ॥ २६६ ॥

इति ब्रह्मरसः।

अथ शशिधररसः।

शुद्धं सूतं समं गंधं तुत्थं च मृतताम्रकम् ॥
मर्दितं वाकुचीक्काथैर्दिनकं वटकीकृतम् ॥ २६७ ॥
निष्कमात्रं सदा खादेच्छ्वेतघ्नेन्दुधरो रसः ॥
वाकुचीतैलकर्षैकं सक्षौद्रमनुपाययेत् ॥ २६८ ॥

अर्थ-पारा शुद्ध कियाहुआ और समानगंधक नीलाथोथा तांबेकी भस्म वाकुचीके काढेमें दिनभर खरल करे फिर तीन तीन मासेकी गोली बनावै यह शशिधररस श्वेतकुष्ठका नाश करता है ऊपरसे एककर्ष वाकुचीका रस शहद मिलाकर पीवे२६७॥२६८॥

इति शशिधररसः।

अथ पारिभद्ररसः।

मूर्च्छितं सूतकं धात्रीफलं निम्बस्य चाहरेत् ॥
तुल्यांशं खादिरक्काथैर्दिनं मर्द्य च भक्षयेत् ॥ २६९ ॥
निष्कैकं दद्रुकुष्ठघ्नः पारिभद्राह्वयो रसः ॥

अर्थ-पारेकी भस्म आंवला और निंबौली ये सब समान भाग ले खैरसारके काढेमें एकदिन खरल करै इसकी चारमासे की गोली बनाकर खाय यह पारिभद्ररस दाद और कोढका नाश करता है।

इति पारिभद्ररसः।

अथ श्वेतारिरसः।

शुद्धं सूतं समं गंधं त्रिफलाभ्रं च वाकुची ॥ २७० ॥
भल्लातं च शिला कृष्णा निंबबीजं समं समम् ॥

मर्दयेद्भृंगजद्रावैः शोष्यं शोष्यं पुनः पुनः ॥ २७१ ॥
इत्थं कुर्य्यात्त्रिसप्ताहं रसः श्वेतारिको भवेत् ॥
मध्वाज्ये खादयेन्निष्कं दंतशूलं विनाशयेत् ॥ २७२ ॥

अर्थ–शुद्ध पारेके समान गंधक, त्रिफला, अभ्रक, बाकुची, भिलावे, मैनसिल, नीमके बीज ये सब समान लेकर भांगरेके रसमें खरल करे जब सब रस सूख जाय फिर और रस डालकर खरल करे इसी प्रकार इक्कीस दिन करनेसे यह श्वेतारिरस बनता है इसकी मात्रा घी और शहदके साथ खानेसे दन्तशूलको नाश करती है ॥ २७० ॥ २७१ ॥ २७२ ॥

इति श्वेतारिरसः ।

अथ कालाग्निरुद्ररसः ।

सूताभ्रं ताम्रतीक्ष्णानां भस्म माक्षिकगंधकम् ॥
वंध्याककोंटकीद्रावै रसो मर्द्यो दिनावधि ॥ २७३ ॥
वंध्याककोंटकीकंदे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः ॥
भूधराख्ये पुटे पाच्ये दिनैकं तु विचूर्णयेत् ॥ २७४ ॥
दशमांशं विषं योज्यं माषमात्रं च भक्षयेत् ॥
रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्प्पनुत् ॥ २७५ ॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तं ह्यनुपानं प्रकल्पयेत् ॥

अर्थ–शुद्धपारा और गंधक, अभ्रक, तांबा, लोहा और सोनामक्खी इन सबकी भस्म बराबर लेवे फिर दिनभर बांझककोंटीके रसमें मर्दन करै फिर बांझककोंटीकी जडमें रख ऊपरसे कपडमिट्टी करदे फिर एकदिन भूधरयंत्रमें पचावै फिर इस रसका दशवां भाग सींगियाविषमें मिलादे और मासेभरकी मात्रा करे यह कालाग्निरुद्ररस दशदिनमें विसर्परोगको दूर करे इसके ऊपर शहद और पीपल मिलाकर ले ॥ २७३–२७५ ॥

इति कालाग्निरुद्ररसः ।

अथ मकरध्वजो रसः ।

स्वर्णादष्टगुणं सूतं मर्दयेद्द्वित्वगंधकम् ॥ २७६ ॥
रक्तकार्पासकुसुमैः कुमार्यास्त्रिदिनं ततः ॥
मुखं काचघटे रुद्ध्वा वालुकायंत्रगं हठात् ॥ २७७ ॥
भस्म कुर्याद्रसेन्द्रस्य नवार्ककिरणोपमम् ॥
भागोस्य भागाश्चत्वारः कर्पूरस्य सुशोभनाः ॥ २७८ ॥
लवंगं मरिचं जातीफलं कर्पूरमात्रया ॥
मेलयेन्मृगनाभिं च गद्याणकमितां ततः ॥ २७९ ॥
श्लक्ष्णपिष्टो रसः श्रीमाञ्जायते मकरध्वजः ॥
वल्लं वल्लद्वयं वास्य ताम्बूलदलसंयुतम् ॥ २८० ॥
भक्षयेन्मधुरं स्निग्धं लघुमांसमवातुलम् ॥
शृतं शीतं सितायुक्तं दुग्धं गोधूममाज्यकम् ॥ २८१ ॥
माषाश्च पिष्टमपरं मद्यानि विविधानि च ॥
करोत्यग्निबलं पुंसां वलीपलितनाशनः ॥ २८२ ॥
मेधायुःकान्तिजनकः कामोद्दीपनकृन्महान् ॥
अभ्यासात्साधकः स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः ॥ २८३ ॥
रतिकाले रतान्ते वा पुनः सेव्यो रसोत्तमः ॥
मदहानिं करोत्येष प्रमदानां सुनिश्चितम् ॥ २८४ ॥
कृत्रिमं स्थावरविषं जंगमं विषवारिजम् ॥
न विकाराय भवति साधकेन्द्रस्य वत्सरात् ॥ २८५ ॥
मृत्युंजयरसाभ्यासान्मृत्युं जयति देहभृत् ॥
तथायं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ॥ २८६ ॥

---

१ मत्स्यानि इत्यपि पाठः ।

अर्थ–सुवर्णके वरक १ तोले, पारा आठ तोले, गंधक सोलह तोले, इन तीनोंकी कजली करे फिर कपासके लालफूलोंके रसमें मर्दन करे फिर तीन दिन ग्वारपाठेके रसमें मर्दन करे फिर इसको काँचकी आतिशी शीशीमें भरकर मुख बन्द करके वालुकायंत्रमें मंद मध्यम और तेज आगसे पकावै ठंढा होनेपर लाल लाल नलीको निकालले फिर इसके एकभागमें चार भाग कपूर, चार भाग लौंग, चार भाग कालीमिरच, चारभाग जायफल और छःमाशे कस्तूरी डालकर सबको खरल कर पक्की शीशीमें भर रक्खै इस प्रकार यह मकरध्वजरस तैयार होता है इसको बलप्रमाण दो रत्ती तथा चार रत्तीकी मात्रा पानमें धरकर खाय इसपर मधुर और हलका मांस खाय अधौटा दूध मिश्री डालकर पीवै गेहूंके पदार्थ घीसहित खाय उडदकी दालके लड्डू इत्यादिक और अनेक प्रकारके मदभी पीवै यह रस बलकारक है बालोंको सफेद नहीं होने देता बुद्धि आयु और कान्तिका बढानेवाला है कामोद्दीपक है अभ्यासपूर्वक इसका सेवन करनेवाला नित्य सौ स्त्रियोंको जीत लेता है यह रस मैथुन करते समय खानेसे निश्चय स्त्रियोंके गर्वको दूर करता है कृत्रिम, स्थावर, जंगम वा पानीके विष इस रसके सेवन करनेवालोंको नहीं सता सक्ते–जैसे मृत्युंजयकी सेवासे जरा मरण दूर होते हैं उसी प्रकार इस रसके सेवनसे मृत्यु हट जातीहै २७६–२८६॥

इति मकरध्वजो रसः ।

अथ मदनकामदेवो रसः ।

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रं च सूतगंधकम् ॥
लोहं च क्रमवृद्धानि कुर्य्यादेतानि मात्रया ॥ २८७ ॥
विमर्द्य कन्यकाद्रावैर्न्यसेत्काचमये घटे ॥
मुद्रितं पिठरीमध्ये धारयेत्सैंधवैर्भृते ॥ २८८ ॥

पिठरीं मुद्रयेत्सम्यक्ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत् ॥
वह्निं शनैः शनैः कुर्याद्दिनैकं तत उद्धरेत् ॥ २८९ ॥
स्वांगशीतं च संचूर्ण्य भावयेदर्कदुग्धकैः ॥
अश्वगंधा च कंकोली वानरी मुशली क्षुरः ॥ २९० ॥
त्रिवेलस्वरसं भाव्यं शतावर्य्या विभावयेत् ॥
पद्मकंदकसेरूणां रसे कासस्य भावयेत् ॥ २९१ ॥
कस्तूरीव्योषकर्पूरैः कंकोलैलालवंगकम् ॥
पूर्वचूर्णादष्टमांशमितचूर्णं विमिश्रयेत् ॥ २९२ ॥
सर्वैः समां शर्करां च दत्त्वा शाणोन्मितं ददेत् ॥
गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेविनः ॥ २९३ ॥
अस्य प्रभावात्सौन्दर्य्यं बलं तेजो विवर्धते ॥
तरुणी रमते बह्वीर्वीर्यहानिर्न जायते ॥ २९४ ॥

अर्थ–मराहुआ रूपा, मराहुआ हीरा मराहुआ सुवर्ण और तांबा, शुद्ध पारा गंधक और मरेहुये लोहेकी क्रमसे बढी हुई मात्रा ले अर्थात् रूपा एक भाग, हीरा दो भाग, सुवर्ण तीन भाग, तांबा चार भाग, इसी तरह औरभी जानों इन सबको ले खरलमें मिलाय घीगुवारके रसमें खरल कर काँचकी शीशीमें भर अच्छी तरह मुँह बन्दकर कपडमिट्टी करके सुखायकर सैंधेनमकसे भरी हुई हंडियाके बीचमें धर ऊपरसे दूसरी हंडियाकी खाम लगाय चूल्हेपै धर एक दिनभर मंदी मंदी आगसे पकावे फिर ठंढी होनेपर उतारकर आकके दूधकी भावनादे फिर असगंध, कंकोल, कौंच, मुसली, तालमखाने और शतावरीके रसकी पृथक् २ तीन २ भावनादे फिर कमलकसेरू और काँसके रसकी एक एक भावनादे फिर कस्तूरी, सोंठ, मिरच, पीपल, कपूर, कंकोल, इलायची, लोंग ये सब

पहिले चूर्णसे आठवें हिस्सेके ले फिर सबके बराबर सफेद मिश्री मिलावै फिर शाण अर्थात् ४ मासे यह चूर्ण आधपाव गौके दूधके साथ खाय और हलका भोजन जैसे भात, मिश्री, दूधका करै तौ इसके प्रभावसे सुन्दरता बल, तेज बढै बहुतसी स्त्रियोंसे विहार करै, वीर्यकी हानि कभी न होय ॥ २८७ ॥ ॥ २८८ ॥ २८९ ॥ २९० ॥ २९१ ॥ २९२ ॥ २९३ ॥ २९४ ॥

इति मदनकामदेवो रसः।

अथ पूर्णेन्दुरसः।

शाल्मल्युत्थैर्द्रवैर्मर्द्य पक्षैकं शुद्धसूतकम् ॥
यामद्वयं पचेदाज्ये वस्त्रे बद्ध्वाथ मर्दयेत् ॥ २९५ ॥
दिनैकं शाल्मलिद्रावैर्मर्दयित्वा वटीं कृताम् ॥
वेष्टयेन्नागवल्ल्या च निःक्षिपेत्काचभाजने ॥ २९६ ॥
भाजनं शाल्मलीद्रावैः पूर्णं यामद्वयं पचेत् ॥
वालुकायंत्रमध्ये तु द्रवे जीर्णे समुद्धरेत् ॥ २९७ ॥
द्विगुंजं भक्षयेत्प्रातर्नागवल्लीदलांतरे ॥
मुशलीं ससितां क्षीरैः पलैकं पाचयेदनु ॥ २९८ ॥
रसपूर्णेन्दुनामायं सम्यग् वीर्यकरो भवेत् ॥
कामिनीनां सहस्रैकं नरः कामयते ध्रुवम् ॥ २९९ ॥

अर्थ–सेमरकी जडके रसमें शुद्ध पारेको पन्द्रह दिन तक मर्दन करे फिर कपडेमें बांधकर दो पहर तक घीमें पकावै फिर पोटलीको निकाल सेमरके रसमें फिर मर्दनकर पानके रसमें खरल कर काचकी शीशीमें भरदे और शीशीमें ऊपरतक सेमरके कन्दका रस भरदे फिर शीशीको वालुकायंत्रमें भर दो पहर तक पकावै रसके जलजानेपर उतारले इस प्रकार तयार होनेपर दो रत्ती पानमें रख प्रातःकाल प्रतिदिन खाय ऊपरसे आधे पल मुसली और उतनीही मिश्री मिलाय गौके

दूधके संग पी ले यह पूर्णेन्दुनाम रस वीर्यका बढानेवाला अत्यन्त पराक्रम करनेवाला है॥२९५॥२९६॥२९७॥२९८॥२९९॥

इति पूर्णेन्दुरसः।

अथ कामिनीमदभंजनो रसः।

शुद्धं सूतं समं गंधं त्र्यहं कह्लारजद्रवैः ॥
मर्दितं वालुकायंत्रे यामं संपुटगं पचेत् ॥ ३०० ॥
रक्तागस्तिद्रवैर्भाव्यं दिनैकं तु सितायुतम् ॥
यथेष्टं भक्षयेच्चानु कामयेत्कामिनीशतम् ॥ ३०१ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा और उतनीही गंधकको तीन दिन एक कह्लारीके रसमें मर्दनकर काचकी शीशीमें भर संपुट लगाय वालुकायंत्रमें पकावे फिर लाल अगस्तके रससे एकदिन मर्दन करै फिर मिश्रीके संग प्रातःकाल दो रत्ती खायकर गायका दूध पीवै तो सौ स्त्रियोंसे भोग करनेकी सामर्थ्य होय॥३००॥३०१॥

इति कामिनीमदभंजनो रसः।

अथ मदनोदयो रसः।

शुद्धं सूतं समं गंधं रक्तोत्पलदलद्रवैः ॥
यामं मर्द्यं पुनर्गंधं पूर्वादर्द्धं विनिक्षिपेत् ॥ ३०२ ॥
दिनैकंमर्दयेत्तत्तु पुनर्गंधं च मर्दयेत् ॥
पूर्वद्रावैर्दिनैकं तु काचकुप्यां निरुध्य च ॥ ३०३ ॥
दिनैकं वालुकायंत्रे पक्वमुद्धृत्य भक्षयेत् ॥
पंचगुंजा सिता सार्द्धं रसोऽयं मदनोदयः ॥ ३०४ ॥
समूलं वानरीबीजं मुशली शर्करा समम् ॥
गवां क्षीरेण तत्पेयं पलार्द्धमनुपानकम् ॥ ३०५ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा और उतनीही गंधक दोनोंकी कजली कर लालकमलके पत्तोंके रसमें पहरभर खरल करे पहिलेसे

आधी गंधक डालकर लालकमलके पत्तोंके रसस मर्दन करे फिर गंधक देकर फिर उसीके रसमें मर्दन करे एकदिन तक इसी प्रकार करता रहै फिर काचकी आतिशी शीशीमें भरकर सात कपडमिट्टीकर वालुकायंत्रमें एक दिन पकावे फिर ठंढा होनेपर उतारकर इस मदनोदयरसमेंसे पांच रत्ती मिश्रीके साथ खाय ऊपरसे कौंचकी जड और बीज मुसली और उतनीही खांड मिलाकर दो तोले फांकले ऊपरसे गौके दूधको पीवे ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥ ३०४ ॥ ३०५ ॥

इति मदनोदयो रसः ।

अथ अनंगसुंदरो रसः ।

पलद्वयं द्वयं शुद्धं पारदं गंधकं तथा ॥
मृतहेम्नस्तु कर्षैकं पलैकं मृतताम्रकम् ॥ ३०६ ॥
मततारं चतुर्निष्कं मर्द्यं पंचामृतैर्दिनम् ॥
रुद्ध्वा तु वै पुटे पश्चाद्दिनैकं तु समुद्धरेत् ॥ ३०७ ॥
पिष्ट्वा पञ्चामृतैः कुर्याद्वटिकां बदराकृतिम् ॥
अनंगसुन्दरो नाम परं पुष्टिप्रदायकः ॥ ३०८ ॥

अर्थ–दो पल शुद्ध पारा और एक पल गंधक, एक कर्ष सुवर्णकी भस्म, एक पल तांबेकी भस्म, चार कर्ष रूपेकी भस्म, इन सबको पंचामृतमें मर्दनकर वालुकायंत्रद्वारा उडाले फिर पंचामृतमें मर्दनकर बेरके समान गोली बनाले तो यह अनङ्गसुन्दररस बहुत पुष्टिकारक तय्यार होता है ३०६॥३०७॥३०८॥

इति अनंगसुन्दरो रसः ।

अथ कामेश्वरो रसः ।

सम्यङ्मारितमभ्रकं कटुफलं कुष्ठाश्वगंधामृता
मेथी मोचरसो विदारिमुशली गोक्षूरकं क्षूरकम् ॥
रम्भाकन्दशतावरी ह्यजमुदा माषास्तिला धान्यकं

ज्येष्ठीनागबला कचूरमदनं जातीफलं सैंधवम्॥३०९॥
भार्ङ्गी कर्कटशृंगिका त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं
चातुर्जातपुनर्नवा गजकणाद्राक्षासमं वासकम् ॥
बीजं मर्कटिशाल्मलीत्रिफलकं चूर्णं समं कल्पयेत्
कर्षार्द्धा गुटिकावलेहमथवा सेव्यं सदा सर्वथा ॥३१०॥
पेयं क्षीरसिता तु वीर्यकरणं स्तम्भोप्ययं कामिनी
रामावश्यकरं सुखातिसुखदं प्रौढांगनाद्रावकम् ॥
क्षीणे पुष्टिकरं क्षये क्षयहरं सर्वामयध्वंसनं
कासश्वासमहातिसारशमनं मन्दाग्निसंदीपनम् ॥३११॥
धातोर्वृद्धिकरं रसायनवरं नास्त्यन्यदस्मात्परम् ॥
अर्शांसि ग्रहणीप्रमेहनिचयश्लेष्मातिरक्तप्रणुत् ॥
नित्यानंदकरं विशेषविदुषां वाचां विलासोद्भव
मभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरात्
सर्वेषां हितकारको निगदितः श्रीवैद्यनाथेन यः॥३१२॥

अर्थ-अभ्रककी भस्म, कायफल, कूठ, असगंध, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, स्याहमुसली, गोखरू, तालम, खाना, केलाकन्द, शतावरी, अजमोद, उडद, तिल, धनियां, बडीगंगेरन, कचूर, मैनफल, जायफल, सेंधानमक, भारंगी, काकडासींगी, त्रिकुटा, दोनोंजीरे, चीता, चातुर्जात, सांठीकी जड, गजपीपल, दाख, अडूसा, कौंचके बीज, सेमर, त्रिफला इन सबको समान ले खरल करे इस में से आधी कर्षकी गोली अथवा चटनी प्रतिदिन सेवन करे. ऊपर मिश्री और दूध पीने से वीर्यको बढाता है स्तंभन करता है, स्त्रियोंको वश करता है सुख देनेवाला है नवयौवनाओंको द्रवीभूत करता है, क्षीण

मनुष्यको पुष्ट करनेवाला है क्षयीको दूर करता है और सम्पूर्ण रोगोंको दूर करता है, खांसी श्वास, अतिसारको नष्ट करता है मन्दाग्निको दीपन करता है, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह, श्लेष्मा, और रक्तविकारों को दूर करता है, धातुओंका बढा-नेवाला, रसायन है इससे परे और कोई औषधि नहीं है नित्य आनन्ददायी है, विशेषकर विद्वानोंकी वाणीको लालित्य देता है इसका सेवन वृद्धावस्थाको नहीं आने देता है यह श्रीवैद्यनाथ ने सबका हितकारी कहा है ॥३०९-३१२॥

इति कामेश्वररसः ।

अथाजीर्णकंटको रसः ।

शुद्धं सूतं विषं गंधं समचूर्णं विचूर्णयेत् ॥
मरिचं सर्वतुल्यांशं कंटकार्य्याः फलद्रवैः ॥ ३१३ ॥
मर्दयेद्भावयेत्सर्वानेकविंशतिवारकान् ॥
वटीं गुंजात्रयां खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ ३१४ ॥

अर्थ-शुद्ध पारा, विष और गंधक ये सब समान भाग ले सबके समान काली मिरच लेकर चूर्ण करले फिर कटेरी के फलके रसकी इक्कीस भावना देवै और तीन रत्तीकी गोलियां बनावे तत्काल सब प्रकार के अजीर्णको दूर करे ॥३१३।३१४॥

इत्यजीर्णकंटको रसः ।

अथोदयभास्करो रसः ।

गंधकेन मृतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् ॥
ऊषणं पंचभागं स्यादमृतं च द्विभागकम् ॥ ३१५ ॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं रत्तिकैकप्रमाणतः ॥
दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानस्य योगतः ॥ ३१६ ॥
गलिते स्फुटिते चैव विपूच्यां मंडले तथा ॥
विचर्चिकादद्रुपामाकुष्ठाष्टकप्रशान्तये ॥ ३१७ ॥

अर्थ-गंधकसे मारा हुआ तांबा दश भाग, काली मिरच पांच भाग, विष दो भाग, सबको बारीक खरल कर एक एक रत्तीकी गोलियां बनावै और कोढीको अनुपानके साथ देवै तौ गलितकुष्ठ, शरीरका फटना, विषूचिका, मंडलकुष्ठ, विच-र्चिका, दाद, खुजली इत्यादि आठ प्रकारके कोढ दूर होवें ॥ ३१५ ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥

इति उदयभास्करो रसः।

अथ रौद्ररसः।

शुद्धं सूतं समं गंधं मर्द्यं यामचतुष्टयम् ॥
नागवल्लीरसैर्युक्तं मेघनादपुनर्नवैः ॥ ३१८ ॥
गोमूत्रे पिप्पलीयुक्ते मर्द्यं रुद्ध्वा पुटेल्लघु ॥
लिहेत्क्षौद्रै रसो रौद्रो गुंजामात्रोऽर्बुदं जयेत् ॥ ३१९ ॥

अर्थ-शुद्ध पारा और गंधक समान लेकर चार पहरतक पान चौंलाई और सांठीके रसमें खरल करे फिर गोमूत्र और पीपलमें घोटकर लघुपुटमें फूंक देवे एक २ रत्तीकी गोलियां बनावे और शहदके साथ खाय यह रौद्ररस अर्बुद रोगको दूर करता है ॥ ३१८ ॥ ३१९ ॥

इति रौद्ररसः।

अथ नित्योदितरसः।

मृतसूतार्कलोहाभ्रविषगंधं समं समम् ॥
सर्वतुल्यांशभल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ३२० ॥
द्रवैः सूरणकन्दोत्थैः खल्वे मर्द्यं दिनत्रयम् ॥
माषमात्रं लिहेदाज्ये रसश्चार्शांसि नाशयेत् ॥ ३२१ ॥
रसो नित्योदितो नाम्ना गुदोद्भवकलांतके ॥
हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदावृषणयोस्तथा ॥ ३२२ ॥

शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्यार्शसां हितः ॥
असाध्यस्यापि कर्त्तव्या चिकित्सा शंकरोदिता ॥३२३॥

अर्थ–पारा, तांबा, लोहा और अभ्रककी भस्म विष और गंधक ये सब समान भाग लेवै सबके बराबर भिलावेके फलोंका चूर्ण मिलाकर जमीकन्दके रससे तीन दिन खरल करे इसमेंसे एक मासे घीके साथ खाय तो यह नित्योदित रस बवासीरको दूर करे और गुदाके रोगोंको, हाथ, पैर, मुख, नाभि, गुदा, अंडकोषकी सूजनको हृदय और पँसलीके दर्दको तथा असाध्य बवासीरको दूर करता है यह शंकरोक्त चिकित्सा असाध्यकीभी करनी योग्य है ॥ ३२०–३२३ ॥

इति नित्योदितो रसः

अथ अर्शःकुठाररसः ।

शुद्धसूतं पलैकं तु द्विपलं शुद्धगंधकम् ॥
मृतं ताम्रं मृतं लोहं प्रत्येकं तु पलत्रयम् ॥ ३२४ ॥
त्र्यूषणं लांगली दन्ती पीलुकं चित्रकं तथा ॥
प्रत्येकं द्विपलं योज्यं यवक्षारं च टंकणम् ॥ ३२५ ॥
उभौ पंचपलौ योज्यौ सैंधवं पंचकं तथा ॥
द्वाविंशत्पलगोमूत्रं स्नुहीक्षीरं च तत्समम् ३२६ ॥
मृद्वग्निना पचेत्सर्वं स्थाल्यां यावत्सुपिंडितम् ॥
माषद्वयं सदा खादेद्रसोप्यर्शःकुठारकः ॥ ३२७ ॥

अर्थ–शुद्ध पारा ४तोले, शुद्ध गंधक ८ तोले, तांबेकी, भस्म, लोहेकी भस्म प्रत्येक बारह बारह तोले, त्रिकुटा, कलिहारी, दंती, पीलू, चीतेकी छाल, प्रत्येक ८तोले जवाखार, सुहागा, प्रत्येक बीस बीस तोले सैंधानमक बीस तोले गोमूत्र पौने दो सेर और इतनाही थूहरका दूध इन सबको मिलाय एक बासनमें भर नीचे मंदी मंदी आग जलावै जब सब मिलाकर गोलासा

बनजाय तब दो दो मासेकी गोलियां बनाकर खाय तौ यह अर्शःकुठार रस बवासीरको दूर करता है ॥ ३२४-३२७ ॥

इत्यर्शःकुठारः ।

अथ विद्याधरो रसः ।

गंधकं तालकं ताप्यं मृतं ताम्रं मनःशिला ॥
शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥ ३२८ ॥
पिप्पल्याश्च कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥
निष्कार्द्धं भक्षयेत्क्षौद्रैः प्लीहगुल्मादिकं जयेत् ॥३२९॥
रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धं च पिबेदनु ॥

अर्थ-गंधक, हरिताल, सोनामक्खी, तांबेकी भस्म, मैनसिला और समान शुद्ध पारा इन सबको ले खरल करै फिर पीपलके काढे और थूहरके दूधसे एक २ दिन खरल करै इस रसमेंसे दो मासे शहदके साथ खाय और ऊपरसे गौका दूध पीवै यह विद्याधर नाम रस तापतिल्ली और वायुगोलाको दूर करता है ॥ ३२८ ॥ ३२९ ॥

इति विद्याधरो रसः ।

अथ वंगेश्वरो रसः ।

भस्मसूतं भस्मवंगं भागैकैकं प्रकल्पयेत् ॥ ३३० ॥
गंधकं मृतताम्रञ्च प्रत्येकं च चतुर्गुणम् ॥
अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं सर्वं तद्गोलकीकृतम् ॥ ३३१ ॥
रुद्ध्वा तद्भूधरे पाच्यं पुटैकेन समुद्धरेत् ॥
एवं वंगेश्वरो नाम्ना प्लीहगुल्मोदरं जयेत् ॥ ३३२ ॥
घृतैर्गुंजाद्वयं लिह्यान्निष्कां श्वेतपुनर्नवाम् ॥
गवां मूत्रैः पिबेच्चानु रजनीं वा गवां जलैः ॥ ३३३ ॥

अर्थ-पारेकी भस्म, रांगकी भस्म, प्रत्येक एक एक भाग गंधक और तांबेकी भस्म प्रत्येक चार चार भाग सबको आक के दूधमें एकदिन खरलकर गोला बनाय भूधरयंत्रमें पचावे यह बंगेश्वर नाम रस ताप तिल्ली, गुल्म और उदरविकारोंको शान्त करता है इस रसकी दो रत्ती घीमें मिलाकर चाटे ऊपरसे चार मासे विषखपरेका चूर्ण फांककर गोमूत्र पीवे अथवा हलदी फांककर गोमूत्र पीले॥३३०॥३३१॥३३२॥३३३॥

इति वंगेश्वरो रसः ।

अथ उदराररिसः ।

पारदं शुक्तितुत्थं च जैपालं पिप्पलीसमम् ॥
आरग्वधफलोन्मज्जा वज्रीदुग्धेन मर्दयेत् ॥ ३३४ ॥
माषमात्रां वटीं खादेद्धरेत्स्त्रीणां जलोदरम् ॥
चिंचाफलरसं चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ ३३५ ॥
जलोदरहरं चैव कठिनेन रेचनेन तु ॥

अर्थ-पारा, शीशेकी भस्म. नीलाथोथा, जमालगोटा पीपल और अमलतासका गूदा ये सब समान ले थूहरके दूधमें मर्दनकर मासे मासेकी गोली बनावे ऊपरसे इमलीका रस पीवे और पथ्य दही और भातका लेवे यह रस स्त्रियोंके जलोदरको दूर करता है और तेज जुलाबसे जलोदर दूर होजाता है ॥ ३३४ ॥ ३३५ ॥

इत्युदराररिसः ।

अथ जलोदराररिसः ।

पिप्पली मरिचं ताम्रं कांचनीचूर्णसंयुतम् ॥ ३३६ ॥
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तुल्यं जैपालबीजकम् ॥
निष्कं खादेद्विरेकं स्यात्सद्यो हन्ति जलोदरम् ॥ ३३७ ॥

रेचनानाञ्च सर्वेषां दध्यन्नं स्तंभनं हितम् ॥
दिनान्ते च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्गयूषकम् ॥ ३३८ ॥

अर्थ–पीपल, कालीमिरच, ताम्रभस्म, हलदीका चूर्ण ये सब लेकर थूहरके दूधमें एकदिन खरलकरे फिर समान भाग जमालगोटा मिलाकर चार मासे खाय दस्त होवे और तत्काल जलोदर दूर होवे दही भातका भोजन दस्तोंके रोकनेके लिये हित है अथवा सायंकालको मूंगका यूष देवे ॥ ३३६ ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥

इति जलोदराररसः।

अथ नाराचरसः।

सूतटंकणतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् ॥
गंधकं पिप्पली शुंठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥३३९॥
सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजानि निस्तुषाणिच ॥
द्विगुंजं रेचने सिद्धं नाराचोऽयं महारसः ॥ ३४० ॥
गुल्मप्लीहोदरं हन्ति पिबेत्तमुष्णवारिणा ॥

अर्थ–पारा, सुहागा, कालीमिरच, एक एक भाग गंधक, पीपल, सोंठ दो दो भाग सबको बारीक पीसले सबके बराबर छीले हुये जमालगोटाके बीज मिलादे दो रत्तीकी गोली देनेसे यह नाराचरस दस्त कराने वाला होवे यह गुल्म, प्लीहा और सब उदरविकारोंको दूर करताहै ऊपरसे गरम जल पीवै ॥ ३३९ ॥ ३४० ॥

इति नाराचरसः।

अथ इच्छाभेदी रसः।

शुंठीमरिचसंयुक्तं रसगंधकटंकणम् ॥ ३४१ ॥
जैपालस्त्रीगुणः प्रोक्तः सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥
इच्छाभेदी द्विगुंजः स्यात्सितया सह दापयेत् ॥ ३४२॥

पिबेच्च चुल्लिकान्यावत्तावद्वारान्विरेचयेत् ॥
तक्रौदनं प्रदातव्यमिच्छाभेदी यथेच्छया ॥
दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः ॥ ३४३ ॥

अर्थ-सोंठ कालीमिरच पारा, गंधक सुहागा एक एक भाग जमाल गोटा तीनभाग सबको मिला खरल करे और इसमेंसे दो रत्ती मिश्रीके साथ खाय ऊपरसे पानी पीवे. पानीके जितने चुल्लें पीवैगा इतनेही दस्त होंगे इच्छा अनुसार छाछ और भातका पथ्य देवे. जो कदाचित् दोष प्रबल होजाय तो उनको लंघन कराके पचावे ॥ ३४१ ॥ ३४२ ॥ ३४३ ॥

इति इच्छाभेदी रसः ।

अथ रसायनाधिकारः ।

प्रणम्य निर्भयं नाथं खेन्द्रदेवं जगत्पतिम् ॥
दिगम्बरं त्रिनेत्रं च जरामृत्युविनाशनम् ॥ १ ॥
अमृतञ्च विषञ्चैव शिवेनोक्तं रसायनम् ॥
अमृतं विधिसंयुक्तं विधिहीनं तु तद्विषम् ॥ २ ॥
रेचनान्ते इदं सेव्यं सर्वदोषापनुत्तये ॥
मृताभ्रं भक्षयेदादौ मासमेकं विचक्षणः ॥ ३ ॥
पश्चात्तु योजयेद्देहे क्षेत्रीकरणमिच्छतः ॥
यत्क्षेत्रीकरणे सूतस्त्वमृतोऽपि विषं भवेत् ॥ ४ ॥
फलसिद्धिकृतस्तस्य सुबीजस्योषरे यथा ॥
नक्षेत्रकरणाद्देवि किंचित्कुर्याद्रसायनम् ॥ ५ ॥
कर्त्तव्यं क्षेत्रकरणं सर्वस्मिंश्च रसायने ॥

अर्थ-निर्भयकारी जगत्पति, दिगम्बर, त्रिनेत्र, जरामृत्युके दूर करनेवाले शिवजीको नमस्कारहै, उन्होंने, अमृत और विष

कहे हैं विधिपूर्वक देनेसे रसायन अमृत है विधिहीन होनेसे विष है रेचनके अन्त में सम्पूर्ण दोषोंके दूर करनेके वास्ते इसका सेवन योग्य है प्रथम एक महीने तक अभ्रक की भस्मका सेवन करना चाहिये पीछे देहकी शुद्धिके अर्थ पारेका सेवन करे देहकी शुद्धिके विना पारा अमृत है वह विष होजाता है, विनाक्षेत्रकी शुद्धिके फल सिद्ध होना कठिन है जैसे ऊषर जमीन में वीज बोना, अतएव विनाक्षेत्रीकरण कुछ रसायन न करे अतएव रसायनमें क्षेत्र करनाही उपयोगी है ॥ १–५ ॥

अथ गंधामृतरसायनम् ।

भस्मसूतं द्विधा गंधं क्षणं कन्याविमर्दितम् ॥ ६ ॥
रुद्ध्वा लघुपुटे पच्यादुद्धृत्य मधुसर्पिषा ॥
निष्कं खादेज्जरामृत्युं हन्ति गंधामृतो रसः ॥ ७ ॥
समूलं भृंगराजं तु छायाशुष्कं विचूर्णयेत् ॥
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत् ॥ ८ ॥
पलैकं भक्षयेच्चानु तच्च मृत्युरुजापहम् ॥

अर्थ–एक तोले पारेकी भस्म और दो तोले गंधकको ग्वारपाठेके रस में थोडीदेर खरल करे फिर शरावसंपुटमें लघुपुटमें फूँक देवे फिर इसको चार मासे घी औ शहदके साथ खानेसे यह गंधामृत बुढापे और मौतको पास नहीं आने देता. जड सहित भांगरेको छायामें सुखाकर कूटले फिर उसके समान त्रिफलाका चूर्ण मिलावे और दोनोंके समान मिश्री मिलाकर रख छोडे पहिले चार मासे गंधामृत घी शहदके साथ खाकर ऊपरसे इसको फांकले ऐसा करनेसे मृत्युआदि रोग नाश होतेहैं ६–८॥

इति गंधामृतरसायनम्।

अथ हेमसुन्दररसः ।

मृतसूतस्य पादांशं हेमभस्म प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥

क्षीराज्यं मधुना युक्तं माषैकं कांस्यपात्रके ॥
लेहयेन्मासषट्कन्तु जरामृत्युविनाशनम् ॥ १० ॥
वाकुचीचूर्णकर्षैकं धात्रीरसपरिप्लुतम् ॥
अनुपानं लिहेन्नित्यं स्याद्रसो हेमसुन्दरः ॥ ११ ॥

अर्थ-पारेकी भस्म और उस से चौथाई सुवर्णकी भस्म मिलावे इसमेंसे एकमासेकी मात्रा छःमासे दूध घी और शहदके साथ कांसी के पात्रमें मिलाकर चाटे तो यह बुढापे और मौत कोजीते इसके ऊपर वाकुचीके चूर्णको आंवलेके रसमें सानकर पीवे यह हेमसुन्दर रसहै ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥

इति हेमसुन्दररसः ।

मृतसंजीवनी गुटिका ।

शुद्धसूतं वंगभस्म सत्त्वमभ्रकरौप्ययोः ॥ १२ ॥
कान्तलोहसमं हेम जम्बीरे मर्दयेद्दृढम् ॥
सप्ताहं सर्वतुल्यांशं गोलं कृत्वा समुद्धरेत् ॥ १३ ॥
गोजिह्वावायसीवन्ध्यानिर्गुंडीमधुसैंधवैः ॥
लेपयेद्वज्रमूपान्ते गोलकं तत्र निक्षिपेत् ॥ १४ ॥
तत्कल्कैश्छादितं कृत्वा पक्षैकं भूधरे पचेत् ॥
यामं यामं समुद्धृत्य लिप्त्वा मूषां पुनः पुनः ॥ १५ ॥
रुद्ध्वाथ पूर्ववत्पाच्यमेनं पक्षात्समुद्धरेत् ॥
यवचिञ्चीपलाशाख्यराजीकर्पासतंडुलैः ॥ १६ ॥
एतैः प्रलेपयेन्मूषां गुटिकां तत्र निक्षिपेत् ॥
टंकणं श्वेतकाचञ्च दत्त्वा यामे दृढं दृढम् ॥ १७ ॥
खदिरांगारयोगेन द्रुतोयं जायते रसः ॥

---

१ जिह्वा इत्यपि पाठः

मूषायां विडयोगेन समं हेमं च जारयेत् ॥ १८ ॥
ततस्त्रियामकैर्मर्द्यं सगोमूत्रं दिनैकतः ॥
अन्धमूषागतो ध्मातो बद्धो भवति वज्रवत् ॥ १९ ॥
मृतसंजीवनी नाम गुटिका वक्रमध्यगा ॥
कर्षमात्रा जरां मृत्युं हन्ति सत्यं शिवोदितम् ॥ २० ॥
शस्त्रस्तंभं च कुरुते ब्रह्मायुर्भवते नरः ॥

अर्थ–स्वच्छ पारा, हीराकी भस्म, अभ्रक और चांदीका सत्त्व, कान्तिसार, लोह और समान सुवर्ण इन सबको जंभीरीके रसमें सातदिनतक खूब खरल करके गोला बनायले, गोभी, काकमाची, बांझककोडी, निर्गुण्डी, शहद और सेंधानमक इन सबका वज्रमूषापर लेपनकरदे बीचमें उस गोलेको रखदे और उसी लुगदीसे ढकदे फिर पन्द्रहदिनतक भूधर यन्त्रमें पकावे प्रतिदिन इसको निकालकर पहिलेकी तरह उन्ही पूर्वोक्त द्रव्योंसे मूषाको लेपकरके और मुख बन्दकरके पन्द्रहदिनतक करता रहे फिर निकालकर जौ, चंचू, ढाक, राई, कपास और चांवल इनसे मूषाको लेपन करै फिर सुहागा और काचका नमक डालकर दिनभर खरल करै और खैरकी लकडीकी आग देवे फिर मूषामें नमकके योगसे समान सुवर्णको जरावे फिर तीन पहर मर्दनकरे फिर एक पहर गोमूत्रके साथ खरल करे और अन्धमूषामें रखकर अग्नि देनेसे वज्रके समान कहा जाता है इसका नाम मृतसंजीवनी गुटिका है इसकी एक कर्षकी मात्रा जरामृत्युको हरती है शस्त्रका स्तंभन करती है आयु दीर्घ होजाती है ॥ १२-२० ॥

इति मृतसंजीवनी गुटिका ।

वीर्यरोधिनी गुटिका ।

नागवल्लीदलद्रावैः सप्ताहं शुद्धसूतकम् ॥ २१ ॥
मर्दयेत्क्षालयेदम्लैश्चतुर्निष्कप्रमाणकम् ॥
विषकंदगतं कृत्वा विषेणैव निरोधयेत् ॥ २२ ॥

ततः शूकरमांसस्य गर्भे कृत्वाथ सिंचयेत् ॥
संध्याकाले बलिं दत्त्वा कुक्कुटीवारुणीयुतम् ॥ २३ ॥
ततश्चुल्ल्यां लोहपात्रे तैले धत्तूरसंयुते ॥
क्षिप्त्वा त्रिंशत्पले पाच्यं तद्रसं मांसपिंडकम् ॥ २४ ॥
संध्यामारभ्य मंदाग्नौ यावत्सूर्योदयं पचेत् ॥
हठाज्जागरणं कुर्य्यादन्यथा तन्न सिद्धिभाक् ॥ २५ ॥
प्रातरुद्धृत्य गुटिकां क्षीरभांडे विनिक्षिपेत् ॥
तत्क्षीरं शुष्यति क्षिप्रमेतत्प्रत्ययकारकम् ॥ २६ ॥
रतिकाले मुखे धार्या गुटिका वीर्यरोधिनी ॥
क्षीरं पीत्वा रमेद्रामां कामाकुलकुलान्विताम् ॥ २७ ॥
स्वमुखाद्धारयेद्धस्ते तदा वीर्यं विमुञ्चति ॥

अर्थ–नागरपानके रसमें शुद्ध पारेको सात दिनतक खरल करे फिर इसको चार निष्क इमलीके पानीसे धो डाले तेलिया मीठेमें रखकर ऊपरसे उसीसे ढक दे फिर सूअरके मांसके बीचमें रखदे सायंकालमेंकुक्कुटी और मदिराकी बलि देकर लोहेकी कढाईमें दो सेर तेल और धतूरा डालकर चूल्हेपर चढादे सन्ध्या-से सूर्य्योदयतक मन्दी मन्दी आगसे पकाता रहे कहीं ऐसा नहो कि आप सोजाय सोनेसे सिद्ध न होगा प्रातःकाल उठकर गुटकेको दूधके बर्त्तनमें डाल दे वह दूध तत्काल सूख जायगा यही इसकी परीक्षा है रतिसमय इस को मुखमें रखनेसे वीर्यको रोकता है दूध पीकर कामाकुल स्त्रियोंसे विषय करे मुखसे हाथमें निकाललेनेपर वीर्य स्खलित होगा ॥ २१–२७ ॥

इति वीर्यरोधिनी गुटिका ।

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्य्यां रसायनगुटिका-कथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अंजनविधिः ।

अथ संपक्वदोषस्य प्रोक्तमंजनमाचरेत् ॥
हेमन्ते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ १ ॥
पूर्वाह्णेचापराह्णे च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥
वर्षासु कुर्यादत्युष्णे वा वसन्ते सदैवहि ॥ २ ॥
श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे ॥
अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं संप्रशस्यते ॥ ३ ॥

अर्थ-दोषके पकनेपर अंजन कहा है हेमन्त और शिशिरमें मध्याह्नमें कहा है. ग्रीष्म और शरदमें दुपहर पहले और दुपहर पीछे,और वर्षामें जिस समय अभ्र आवे और गरमी बहुत पडे, और वसन्त ऋतुमें सदा हितकारक है. थकावटमें, वमन होनेपर, डरमें,धूमपानमें, नवीनज्वरमें, अजीर्णमें दस्त होनेमें अञ्जन न लगाना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

वर्तिप्रमाणम् ।

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णांजने भिषक् ॥
प्रमाणं मध्यमे सार्द्धं द्विगुणं च मृदौ भवेत् ॥ ४ ॥

अर्थ-मटरकी बराबर वर्त्ती तीक्ष्णांजनमें, डेढकी बराबर मध्यममें और मृदुमें दुगुणी बनावै ॥ ४ ॥

अन्यच्च ।

सूतकं गंधकोपेतं चांगेरीरसमूर्च्छितम् ॥
अंजनं दृष्टिदं नृणां नेत्रामयविनाशनम् ॥ ५ ॥

अर्थ-पारा और गंधक चांगेरीके रसमें खरलकर अंजन लगावे तो यह अंजन दृष्टि देनेवाला और नेत्रोंके सम्पूर्ण रोगों को नाश करनेवाला होता है ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमंजनम् ॥
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमंजनं नयनामृतम् ॥ ६ ॥

अर्थ-पारा और शीसा बराबर २ तोले और उनसे दूना सुरमा डाले और थोडासा कपूर डाल दे यह अंजन नयनामृत तयार होता है ॥ ६ ॥

अन्यच्च ।

कृष्णसर्पवसा शंखः कतकं कट्फलमंजनम् ॥
रस एष मरीचेन अन्धानां दर्शनम्परम् ॥ ७ ॥

अर्थ-काले सांपकीचर्बी, शंख, निर्विसी, कायफल और अंजन इनको कालीमिरचके पानीमें खरलकर ले यह अंजन अंधोंको दृष्टि देनेवाला है ॥ ७ ॥

अन्यच्च ।

शंखस्य भागाश्चत्वारस्तदर्द्धेन मनःशिला ॥
मनःशिलार्द्धं मरिचं मरिचार्द्धेन पिप्पली ॥ ८ ॥
वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हन्ति मस्तुना ॥
चिर्पिटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण च पुष्पकम् ॥ ९ ॥

अर्थ-शंख चारभाग, मैनसिल दो भाग, कालीमिरच एक भाग और पीपल आधे भाग इनकी गोली बनावे पानीमें घिसकर लगानेसे धुन्धको दूर करतीहै तोडके साथ लगानेसे अर्बुदको शहदके साथ लगानेसे खुजली को स्त्रीके दूधके साथ लगानेसे फूलीको दूर करताहै ॥ ८ ॥ ९ ॥

अन्यः प्रकारः ।

अपामार्गशिखां घृष्ट्वा मधुना सैंधवेन च ॥
ताम्रपात्रे कृता नेत्रे हन्ति पीडां सुदुस्तराम् ॥ १० ॥
दंतैर्दन्तिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ॥

शंखमुक्ताम्भोधिफेनयुतैःसर्वैर्विचूर्णयेत् ॥ ११ ॥
हन्ति वर्तिः कृता श्लक्ष्णं शुक्राणां नासिनी परम् ॥

अर्थ—ओंगाकी बालको शहद और सैंधेनमक्कके साथ घिस कर तांबेके बर्त्तनमें रख ले नेत्रोंमें लगानेसे महापीडाको दूर करती है हाथी, सुअर, ऊंट, गौ, घोडा, बकरी और गधाके दांत शंख मोती समुद्रफेन इन सबको पीसले इनकी चिकनी बत्ती बनावे यह नेत्रोंके सब रोगोंको दूर करनेवालीहै १०।११।

अन्यः प्रकारः ।

तुत्थमाक्षिकसिन्धूत्थशिवाशंखमनःशिला ॥
गैरिकोदकफेनं च मरिचं चेति चूर्णयेत् ॥ १२ ॥
संयोज्य मधुना कुर्य्यादन्धानां सा रसक्रिया ॥
वर्ध्मरोगं च तिमिरं काचशुक्रहरं परम् ॥ १३ ॥

अर्थ—नीलाथोथा, सोनामक्खी, सेंधानमक, हरड, शंख, मैनसिल, गेरू, समुद्रफेन, कालीमिरच, इन सबको शहदके साथ खरलकर नेत्रोंमें लगावे यह वर्ध्मरोग धुन्ध फूली इत्यादिको नाश करती है ॥ १२ ॥ १३ ॥

चन्द्रोदया वर्ती ।

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ॥
पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ १४ ॥
छागीक्षीरेण संपिष्ट्वा वर्तिं कृत्वा यवोन्मिताम् ॥
हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्यादथांजनम् ॥ १५ ॥
तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् ॥
रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ॥ १६ ॥

अर्थ—शंख, बहेडेकी छाल, हरड, मैनसिल, पीपल, काली, मिरच, कूठ, वच ये सब बराबर ले बकरीके दूधमें खरलकर

जौकी बराबर बत्ती बनावे हरेणु(मटर)के समान गोली घिस कर आंखमें लगावे धुन्ध, रोहोंका पडना, काच, पटल, अर्बुद, रतोंध,फूली इन सबको यह चन्द्रोदयवर्ती दूर करती है१४–१६

इति चन्द्रोदया वर्ती ।

प्रत्यंजनमाह ।

शुद्धे नागे द्रुते तुल्यं शुद्धसूतं विनिक्षिपेत् ॥
कृष्णांजनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १७ ॥
दशमांशेन कर्पूरमस्मिश्चूर्णे प्रदापयेत् ॥
एतत्प्रत्यंजनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम् ॥ १८ ॥

अर्थ–शुद्ध सीसेको पिघलाकर उसमें शुद्ध किया हुआ पारा डालदे दोनोंकी बराबर काला सुरमा डालकर कजली करले और दशवां हिस्सा कपूर डालदे यह प्रत्यंजन होता है नेत्रोंकी बीमारियोंको दूर करनेके हेतु नयनामृत है ॥ १७ ॥ १८ ॥

इति प्रत्यंजनम् ।

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ॥
जाता रोगाः प्रणश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ॥ १९ ॥
त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ॥
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ २० ॥

अर्थ–भोजन करके हथेलियोंको आपसमें घिसकर आंखोंमें लगावे तो उत्पन्न हुए नेत्ररोगोंका नाश करे और कभी रोग न होनेपावे त्रिफलाके जलसे प्रातःकाल नेत्रोंको धोनेसे तत्काल धुन्धादिक रोग नष्ट होजाते हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

अथातः केशरंजनं कथ्यते ।

त्रिफलालोहचूर्णं तु वारिणा पेषयेत्समम् ॥
द्वयोस्तुल्येन तैलेन पचेन्मृद्वग्निना क्षणम् ॥ २१ ॥

तैलतुल्ये भृंगरसे तत्तैलं तु विपाचयेत् ॥
स्निग्धभांडगतं भूमौ स्थितं मासात्समुद्धरेत् ॥ २२ ॥
सप्ताहं लेपयेद्वेष्ट्य कदल्याश्च दलैः शिरः ॥
निर्वाते क्षीरभोजी स्यात्क्षालयेत्रिफलाजलैः ॥ २३ ॥
नित्यमेवं प्रकर्तव्यं सप्ताहं रंजनं भवेत् ॥
यावज्जीवं न संदेहः कचाः स्युर्भ्रमरोपमाः ॥ २४ ॥

अर्थ-त्रिफला, लोहचूरा. इन दोनोंको पानीमें पीस डाले दोनोंके बराबर तेल डालकर क्षणभर खरल करले तेलके बराबर भांगरेके रसमें तेलको पकाकर चिकनी हंडियामें भरकर पृथ्वीमें गाडदे महीनेभर पीछे निकालले इस तेलसे सात दिन तक लेप करे ऊपरसे केलेके पत्ते लपेटदे विनाहवाके मकानमें बैठकर त्रिफलाके जलसे धोवे दूधका भोजन करे ऐसे सातदिन तक करनेसे जीने पर्य्यन्त बाल भौंरेसदृश काले रहैंगे ॥ २१-२४ ॥

काकमाची यवा जाती समं कृष्णतिलं ततः ॥
तत्तैलं ग्राहयेद्यंत्रे तेनस्यात्केशरंजनम् ॥ २५ ॥

अर्थ-काकमाची, जौ, चमेली और काले तिल इन सबका तेल यंत्र द्वारा निकालकर बालोंपर लगावे बालकाले होयँ २५

अन्यच्च ।

लौहमलामलकल्कैः सजपाकुसुमैः नरस्सदास्नायी ॥
पलितानीह निहन्याद्गंगास्नायीव नरकौघम् ॥ २६ ॥

अर्थ-लोहकी कीटी, आंवले और जपाके फूल इनसे सदा स्नान करनेसे सफेद बाल ऐसे जाते रहते हैं जैसे गंगामें स्नान करनेसे पाप समूहोंका नाश होजाता है ॥ २६ ॥

अन्यच्च ।

काश्मर्य्या मूलमादौ सहचरकुसुमं केतकीनां च मूलं

लौहं चूर्णं सभृङ्गं त्रिफलजलयुतं तैलमेभिर्विपक्कम् ॥
कृत्वा वै लोहभांडे क्षितितलनिहितं मासमेकं निधाय
केशाःकाशप्रकाशा भ्रमरकुलनिभा लेपनादेव कृष्णाः२७

अर्थ–कुम्हेरनकीजड, पियाबासेके फूल, केतकीकी जड, लोहचूर्ण, भांगरा, त्रिफला, काजल तेल इन सबको लोहेके बर्तनमें भर पृथ्वीमें गाडदे महीनेभर पीछे निकाले और केशोंपर लगावे तो बाल लम्बे और तत्क्षण भौंरेसे काले होजाते हैं॥२७॥

शुक्लीकरणमाह ।

वज्रीक्षीरेण सप्ताहं सुश्वेतान् भावयेत्तिलान् ॥
तैलेन लिप्ताः केशाः स्युः शुक्ला वै नात्र संशयः ॥२८॥

अर्थ–सेहुंडके दूधमें सफेद तिलोंको सात दिनतक भावनादे फिर तेल निकालकर बालोंपर लगावे तो बाल सफेद होजायँ२८

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमंजर्यां नेत्रांजनकेशरञ्जनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ वीर्यस्तम्भनमाह ।

कर्पूरं टंकणं सूतं तुल्यं मुनिरसं मधु ॥
मर्दयित्वा लिपेल्लिंगं स्थित्वा यामं तथैव च ॥ १ ॥
ततः प्रक्षालयेल्लिंगं रमेद्रामां यथोचिताम् ॥
वीर्यस्तम्भकरं पुंसां सम्यङ्नागार्जुनोदितम् ॥ २ ॥

अर्थ–कपूर, सुहागा, पारा ये समान भागले अगस्तके रस और मधुमें मर्दनकर लिङ्गपर लेपन करे फिर उसी प्रकार पहरभर तक रहे तब लिङ्गको धोकर स्त्री संसर्ग करे तो वीर्यस्तंभ होय यह नागार्जुनका कहा हुआ है ॥ १ ॥ २ ॥

अन्यच्च।

कृकलासस्य पुच्छाग्रमुद्रिका प्रोततन्तुभिः॥
वेष्टया कनिष्ठिकाधार्या नरो वीर्यं न मुञ्चति॥ ३॥

अर्थ-सरटकी पूंछका अग्रभाग लेकर तुनकोंसे गूंथकर अगूठी बनाकर कनिष्ठ अंगुलीमें धारण करनेसे रतिकालमें वीर्य स्खलित नहीं होता है॥ ३॥

अन्यच्च।

मधुना पद्मबीजानि पिष्ट्वा नाभिं प्रलेपयेत्॥
यावत्तिष्ठत्यसौ लेपस्तावद्वीर्यं न मुंचति॥ ४॥

अर्थ-कमलगट्टाकी मिंगी शहदमें पीसकर नाभी पर लेप करले जब तक लेप रहेगा वीर्य्यस्खलित न होगा॥ ४॥

अन्यः प्रकारः।

चटकाण्डं तु संग्राह्य नवनीतेन पेषयेत्॥
तेनप्रलेपयेत्पादौ शुक्रस्तम्भः प्रजायते॥ ५॥
यावन्न स्पृशते भूमिं तावद्वीर्यं न मुञ्चति॥

अर्थ-चिडैयाके अंडोंको मक्खनमें पीसकर पांवोंके तलुओं-पर लेप करनेसे स्तंभन होता है जबतक पृथ्वीको स्पर्श न करे तबतक वीर्य स्खलित न होगा॥ ५॥

अन्यच्च।

वनक्रोडस्य दंष्ट्राग्रं दक्षिणं च समाहरेत्॥ ६॥
कट्यामुपरि यद्बद्ध्वा शुक्रस्तम्भः प्रजायते॥

अर्थ-वनसुअरकी दाहिनी डाढका अग्रभाग कमरमें बांध-कर मैथुन करनेसे वीर्य्यस्तंभन होता है॥ ६॥

अन्यः प्रकारः

डुंडुभो नामतः सर्पः कृष्णवर्णस्तमाहरेत्॥ ७॥

तस्यास्थि धारयेत्कट्यां नरो वीर्यं न मुञ्चति ॥
विमुञ्चति विमुक्तेन सिद्धयोग उदाहृतः ॥ ८ ॥

अर्थ–काले डुंडुभ नाग सांपकी हड्डीको कमरमें बांधनेसे वीर्यस्तंभन होय उसको खोलनेसे वीर्यस्खलित होय यह सिद्ध-योग है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

रक्तापामार्गमूलं तु सोमवाराभिमंत्रितम् ॥
भौमे प्रातः समुद्धृत्य कट्यां बद्धा न वीर्यमुक् ॥ ९ ॥

अर्थ–सोमवारको लाल शेंगाकी जडको न्यौते मंगलके दिन प्रातः काल लाकर कमरमें बांधनेसे वीर्यस्तंभन होय ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

खसपलशुंठीक्काथः षोडशशेषोनगुडेन निशि पीतः ॥
कुरुते रतौ न पुंसो रेतःपतनं विनाम्लेन ॥ १० ॥

अर्थ–एक पल खस सोंठके क्वाथमें सोलहवां हिस्सा गुड डालकर रतिके समय पीनेसे वीर्यस्खलित नहीं होता है जब खटाई खाय तब वीर्यस्खलित होगा ॥ १० ॥

सूरणं तुलसीमूलं ताम्बूलेन तु भक्षयेत् ॥
न मुञ्चति नरो वीर्यमेकैकेन न संशयः ॥ ११ ॥

अर्थ–जमीकन्द तुलसीकी जडको पानके संग खानेसे मनुष्य वीर्यको नहीं त्यागताहै यह एक एकही बहुत गुणकारक हैं तीनों मिलाकर तो बहुतही उपयोगी होते हैं ॥ ११ ॥

इति वीर्यस्तम्भनप्रकरणम् ।

अथ स्थूलीकरणमाह ।

वराहवसया लिंगं मधुना सह लेपयेत् ॥
स्थूलं दृढं च दीर्घं च पुंसो लिङ्गं प्रजायते ॥ १२ ॥

अर्थ-सुअरकी चर्बी शहदके संग लिङ्ग पर लेप करनेसे मनुष्यका लिङ्ग स्थूल दृढ और बडा होजाता है ॥ १२ ॥

अथ ध्वस्तकरणम्।

क्षौद्रेण च समं घृष्टं पुण्डरीकस्य केशरम् ॥
ध्वस्तं कुर्य्यात्ततो मेढ्रं रत्यन्यत्राप्यसंशयः ॥ १३ ॥

अर्थ-कमलकी केशर शहदमें घिसकर लिङ्गपर लगावे तो टेढा होजाय ॥ १३ ॥

अथ षंढत्वकरणम् ।

अनुराधासुनक्षत्रे लांगलीमूलिका ध्रुवम् ॥
निखाता मैथुनस्थाने पुंस्त्वखंडत्वकारिणी ॥ १४ ॥
निशाषट्तिन्दुचूर्णेन भावितेनाजवारिणा ॥
पानाशनप्रयुक्तेन षण्ढत्वं जायते नृणाम् ॥ १५ ॥

अर्थ-अनुराधा नक्षत्रमें कलिहारीकी जड लाकर मैथुनस्थानमें गाडदे तो पुरुषपन जाता रहे हलदी और तेन्दूके चूर्णको बकरेके मूत्रकी भावना देकर खाने पीनेसे मनुष्य नपुंसक होजाता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

इति षण्ढत्वकरणम् ।

अथ षण्ढत्वनाशनम् ।

तिलगोक्षुरयोश्चूर्णं छागीदुग्धेन पाचितम् ॥
शीतलं मधुना युक्तं भुक्तं षंढत्वनाशनम् ॥ १६ ॥

अर्थ-तिल, गोखरूको बकरीके दूधमें औटाकर शहद डालकर पीनेसे नपुंसकत्व दूर होजाता है ॥ १६ ॥

अन्यच्च ।

ऊर्णनाभिस्तु यो जीवो मधुना सह लेपयेत् ॥
तेन लेपयतो नाभिं वद्धषण्ढ्यं विमुच्यते ॥ १७ ॥

अर्थ-मकडीको शहदसे लपेट दे फिर उससे टूंढीको लेपन करे तो नपुंसकपना दूर होजाता है ॥ १७ ॥

अथ स्त्रीद्रावणम् ।

एक एव महाद्रावी मालतीसम्भवो रसः ॥
किं पुनर्यदि युज्येत मधुकर्पूरपारदैः ॥ १८ ॥

अर्थ-चमेलीका रस स्त्रीद्रावणके लिये बहुतही उपयोगी है इसमें शहद कपूर और पारा मिलानेसे बहुतही उपयोगी होजाताहै १८

अन्यः प्रकारः ।

आर्द्रकं गंधकं चैव राजिकं चाथ टंकणम् ॥
संपेष्य सममात्राणि क्षपयेन्निम्बुजे जले ॥ १९ ॥
स्थापयेद्घटिकास्तिस्रो हस्ते वै धारयेत्ततः ॥
यावन्त्यो ललनाः पंच आजिघ्रन्ति द्रवन्ति वै ॥ २० ॥

अर्थ-अदरख, गंधक, राई और सुहागा ये सब समान लेकर पीसडाले फिर नींबूके रसमें तीन घडीतक पडा रहने दे फिर हाथपर धरले इसको जितनी स्त्रियां ५ बार सूंघे वे सब द्रवीभूत हो जाँय ॥ १९ ॥ २० ॥

इति स्त्री द्रावणम् ।

अथ स्त्रीवशीकरणम् ।

मधुसैंधवसंयुक्तं पारावतमलान्वितम् ॥
एतल्लिप्तेन्द्रियो रामां दासीवत्कुरुते रतौ ॥ २१ ॥

अर्थ-शहद, सेंधानमक, कबूतरकी बीठ ये तीन खरलकर लिंगपर लेप करनेसे स्त्री दासीके समान होजाती है ॥ २१ ॥

अन्यच्च ।

कपीन्द्रियं शशी सूतं कुंकुमं कनकं मधु ॥
एतल्लिप्तेन्द्रियो रामां दासीवत्कुरुते रतौ ॥ २२ ॥

अर्थ-कौंचके बीज, कपूर, पारा, केशर धतूरा, और शहद इन सबको पीसकर इन्द्रियपर लेपकरके मैथुन करनेसे स्त्री दासी के समान हो जाती है ॥ २२ ॥

इति स्त्रीवशीकरणम् ।

अथ स्त्रीकर्षणम् ।

चूर्णिते मधुसंयुक्ते महारिष्टफलच्छदैः ॥
लिंगलेपेन सुरते द्रवो भवति योषिताम् ॥ २३ ॥

अर्थ-शहद मिलाकर बकायनके पत्तोंसे लिंगपर लेपकरके स्त्रीसमागम करनेसे स्त्री द्रवीभूत होती है ॥ २३ ॥

अन्यच्च ।

वृत्तमध्यस्थितं नाम तद्बाह्ये ह्रींचतुष्टयम् ॥
तद्बहिः क्लींचतुष्कं च लिखित्वा शिलयाखिलम् ॥२४॥
शुभनक्षत्रसंयोगे स्थापितं मधुनि ध्रुवम् ॥
स्त्रियमाकर्षति क्षिप्रं यन्त्रमेतन्न संशयः ॥ २५ ॥

अर्थ-एकवृत्त खींचकर बीचमें नाम लिखदे उसके बाहर चार ह्रीं लिखदे और उसके बाहर चार क्लीं लिखदे ये सब शुभ नक्षत्रयोगमें मैनसिलसे लिखकर शहदमें डालदे निश्चय उस स्त्रीका आकर्षण शीघ्र होय ॥ २४ ॥ २५ ॥

वशीकरणम् ।

चन्दनं तगरं कुष्ठं प्रियंगुं नागकेशरम् ॥
कृष्णां तिंतिडिकं चैव समभागानि कारयेत् ॥ २६ ॥

दापयेच्चैव सप्ताहमात्मपञ्चमलेन तु ॥
खाने पाने प्रदातव्यं स्त्रियं वा पुरुषं तथा ॥ २७ ॥
यावज्जीवेत्सदा दासी आत्मना च धनेन च ॥
ॐ नमो भगवते उमामहेश्वराय ॐ नमो मोहिनीये
मिलि मिलि सुभगे स्वाहा । अनेन सप्ताभिमन्त्रितं
कृत्वा नियोंजयेत् वशीकरणं भवति ॥

अर्थ-चन्दन, तगर, कूट, प्रियंगु, नागकेसर, पीपल तिंतिडीक ये सब बराबर लेकर अपने पांच मल अर्थात् नाक, कान, आंख, लिङ्ग और गुदाके मलके सातदिनतक जिस स्त्री पुरुषको दिया जाय वह अपनपेसे और धनसे सदा दासवत् रहैगा "ॐनमो भगवते उमामहेश्वराय, ॐनमोमोहनीये मिलि मिलि सुभगे स्वाहा" यह मंत्र सातवार पढकर दे वश होजाय २६॥२७

अन्यच्च ।

शंखपुष्पी मधुपुष्पी तथा कुंचिकिपत्रिका ॥
श्वेतगिरिसमायुक्ता समभागानि कारयेत् ॥ २८ ॥
सप्ताहं दापयेद्युक्त्या ह्यात्मपंचमलेन तु ॥
खाने पाने प्रदातव्यं वशीकरणमुत्तमम् ॥ २९ ॥
पूर्वोक्तमंत्रेण सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा दापयेत् ॥

अर्थ-शंखाहुली, महुआ और कुंचुकीके पत्र ये और सफेद कनेर समान लेकर सातदिन तक पूर्वोक्त पांच मलोंके साथ पूर्वोक्त मंत्र सातवार पढकर खाने पीनेमें देनेसे वशीकरण होताहै २९॥

अथ भगसंकोचनम् ।

प्रक्षालने भगे नित्यं कृते चामलवल्कलैः ॥
वृद्धापि कामिनी कामं बालेव कुरुते रतिम् ॥ ३० ॥

अर्थ-आँभलेकी छालसे भगको नित्य धोनेसे वृद्धस्त्रीभी षोडशवर्षकी स्त्रीके समान रमण करती है ॥ ३० ॥

अथ लोमशातनम् ।

हरितालचूर्णकलिकालेपात्तेनैव वारिणा सद्यः ॥३१॥
निपतन्ति केशनिचयाः कौतुकमिदमद्भुतं कुरुते॥३२॥

अर्थ-हरिताल और चूना, चूनेके पानीसे पीसकर लगानेसे बाल तत्काल झड पडते हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अन्यच्च ।

पलाशचिंचातिलमाषशंखं दहेदपामार्गसपिप्पलोपि ॥३३॥
मनःशिला तालकचूर्णलेपात्करोति निर्लोम शिरः क्षणेन३४

अर्थ-पलाश, चिंचा, तिल, उडद, शंख, ओंगा, पीपल, मैनशिल, हरिताल, और चूना ये सब लगानेसे तत्काल बाल गिरपडते हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अथ विद्वेषकरणम् ।

गर्दभस्य रजो गृह्य लुलितं गात्रसंभवम् ॥ ३५ ॥
मृतकस्य तथा भस्म नारीरजःसमन्वितम् ॥ ३६ ॥
एकीकृत्य क्षिपेद्रात्रौ शय्यायामासनेपि वा ॥ ३७ ॥
नूनं संजायते द्वेषः कथितो मालतीमते ॥ ३८ ॥

अर्थ-जिस जगह गधा लोटाहो उस जगहकी धूल, मुरदेकी भस्म, और स्त्रीका रज तीनोंको मिलाकर रात्रिके समय जिस शय्या अथवा आसनपर सोते बैठते हों डाल देवै तौ निश्चय दोनोंमें कलह होवे ॥ ३५-३८ ॥

अन्यच्च ।

अन्यद्योगवरं वक्ष्ये विद्वेषकरणं परम् ॥
युध्यमानावुभौ श्वानौ परस्परविरोधिनौ ॥ ३९ ॥

तयोर्धूलिं समादाय हन्यते योषितां रतिः ॥
सत्यं भवति विद्वेषं नात्र कार्या विचारणा ॥ ४० ॥

अर्थ–एक और उमदा उपाय लडाई करानेका है. जहां दो कुत्ते आपसमें लडते होंय वहांकी धूल उठाकर स्त्री पुरुषोंको मारदे तो उनमें निश्चय लडाई हो इसमें कुछ सन्देहका काम नहीं है।३९।४०।

अथ स्तनदृढीकरणम् ।

सपद्मबीजं सितया भक्षितं पद्मवारिणा ॥
दृढं स्त्रीणां स्तनद्वन्द्वं मासेन कुरुते भृशम् ॥ ४१ ॥

अर्थ–कमलगट्टाकी मींगी और मिश्री कमलके जलके साथ फांकनेसे एक महीनेमें स्त्रियोंके कुच करडे होजाते हैं ॥ ४१ ॥

अन्यच्च ।

मुंडीचूर्णकषायेण युतं तैलं विपाचितम् ॥
पतितं यौवनं यस्यास्तस्याःस्तनोन्नतिर्भवेत् ॥४२॥

अर्थ–गोरखमुंडीके क्वाथको तेलमें पकाकर कुचोंपर लेप करनेसे नवीन स्त्रीके समान कुच कठोर होजाते हैं ॥ ४२ ॥

अथ वन्ध्याकरणम् ।

तण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तन्दुलवारिणा ॥
ऋत्वन्ते त्र्यहपीतानि वन्ध्यां कुर्वन्ति योषितम्॥४३॥

अर्थ–चौंलाईकी जड चांवलके पानीके साथ पीसकर ऋतुके अन्तमें तीनदिन पीनेसे स्त्री बांझ होजाती है ॥ ४३ ॥

अन्यच्च ।

कांजिकेन जपापुष्पं पिष्ट्वा पिबति यांगना ॥
ऋतौ त्र्यहं निपीतानि वन्ध्यां कुर्वन्ति योषितम् ॥४४॥

अर्थ–जो स्त्री कांजीके साथ जपाके फूल पीसकर ऋतुकालमें तीन दिन पीवे सो वन्ध्या होय ॥ ४४ ॥

अन्यच्च ।

धत्तूरं मल्लिकापुष्पं गृहीत्वा कटिसंस्थितम् ॥
गर्भं निवारयत्येव रण्डावेश्यादियोषिताम् ॥ ४५ ॥

अर्थ–धतूरा और चमेलीके फूल जो कमरमें बांधे तो रंडा और वेश्यादिस्त्रियोंके गर्भका निवारण होजाता है ॥ ४५ ॥

अन्यच्च ।

धूपिते योनिरन्ध्रे तु निम्बकाष्ठेन युक्तितः ॥
ऋत्वन्ते रमते सा स्त्री गर्भदुःखविवर्जिता ॥ ४६ ॥

अर्थ–यत्नपूर्वक ऋतुके अन्तमें नीमकी छालका योनिमें धुवां देवे और फिर उसके साथ रमण करे तो उसके गर्भ नहीं रहने पाता ॥ ४६ ॥

अथ वन्ध्यात्वनिवारणम् ।

नागकेशरपुष्पाणां चूर्णं गोसर्पिषा सह ॥
सेवनाल्लभते पुत्रमृतौ दुग्धान्नभोजिनी ॥ ४७ ॥

अर्थ–नागकेशरके फूलका गौके घीके साथ सेवन करनेसे पुत्र होताहै ऋतुकालमें दूधचावलका भोजन करे ॥ ४७ ॥

बीजानि मातुलिंगस्य दुग्धस्विन्नानि सर्पिषा ॥
सगर्भामिति कुर्वन्ति पानाद्वन्ध्यामपि स्त्रियम् ॥ ४८ ॥

अर्थ–दूधमें भीगेहुए बिजोरेके बीज घीके साथ खानेसे बांझ स्त्रीभी गर्भवती होजाती है ॥ ४८ ॥

अन्यच्च ।

मातुलिंगस्य बीजानि कुमार्या सह पेषयेत् ॥
क्षीरेण सह दातव्यं गर्भमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४९ ॥

अर्थ–बिजोरेके बीज ग्वारपाठेके साथ पीसकर दूधके साथ खानेसे स्त्री गर्भधारण करती है ॥ ४९ ॥

Kaikhoshru Hirtabhay

अन्यत् ।

पिप्पलीं शृंगवेरं च मरिचं केसरं तथा ॥
घृतेन सह पातव्यं वन्ध्यागर्भप्रदं परम् ॥ ५० ॥

अर्थ-पीपल, अदरख, कालीमिरच, केशर ये सब घीके साथ खानेसे बांझ स्त्री गर्भवती होवे ॥ ५० ॥

अन्यत ।

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं पिष्टं च कन्यका ॥
ऋत्वन्ते घृतदुग्धाभ्यां पीत्वा प्राप्नोति संयुतम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-पुष्यनक्षत्रमें लाईहुई लक्ष्मणाकी जडको ग्वारपाठेके साथ पीसकर घी और दूधके साथ स्त्रीधर्मके अनन्तर पीनेसे स्त्री गर्भधारण करती है ॥ ५१ ॥

अन्यत् ।

यासां पुष्पागमो नास्ति ऋतुकाले च योषिताम् ॥
तासां कुर्याच्चिकित्सेयं पुनः पुष्पागमो भवेत् ॥ ५२ ॥
पिप्पली च यवक्षारं विडंगा मन्मथं फलम् ॥
शुभ्रं तु तुंबिनीबीजं गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ५३ ॥
मुंडी च क्षीरसंयक्ता योनिद्वारेंगना शुभा ॥
त्रिपञ्चसप्तरात्रेण पुष्पं भवति नान्यथा ॥ ५४ ॥

अर्थ-ऋतुकालमें जिन स्त्रियोंको गर्भ नहीं होता है उनकी नीचे लिखी हुई चिकित्सा करनेसे फिर पुष्पागमन होता है पीपल, जवाखार, बायविडंग, मैनफल, और सफेद तुम्बीके बीज इन सबको पीसकर गोली बनावे, गोरखमुण्डी और दूधके साथ योनिमें रखनेसे फिर तीन पांच या सातदिनमें पुष्पागमन होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

अन्यत ।

अन्यद्योगवरं वक्ष्ये येन सा सफला भवेत् ॥
उशीरमधुयष्टी च लोध्रमिन्द्रयवानपि ॥ ५५ ॥
घृतं सर्जरसं चैव माक्षिकं त्रायमाणकम् ॥
सौभाञ्जनकमूलानि समभागानि कारयेत् ॥ ५६ ॥
पेषयित्वा ततो द्रव्यमजाक्षीरेण पाचयेत् ॥
सप्तरात्रं पिबेन्नारी यावत्तिष्ठति शोणितम् ॥ ५७ ॥
ततो योनौ विशुद्धायां पश्चाद्द्यान्महौषधम् ॥
कुमारीक्षीरसंयुक्तं नस्ये पाने प्रदापयेत् ॥ ५८ ॥
तेन सा लभते पुत्रं सत्यं चैव सुरार्चितम् ॥

अर्थ–और बहुत अच्छा उपाय है खस, मुलहटी, लोध, इन्द्रजौ-घी, सर्जरस, सोनामक्खी, त्रायमाण और सहँजनेकी जड सब बराबर लेकर पीसले फिर बकरीके दूधके साथ जबतक स्त्री रुधि-रयुक्त रहे सात दिनतक दे योनि शुद्ध होनेपर ग्वारपाठेके साथ सोंडको सुँघावे और पिवावे ऐसाकरनेसे स्त्री पुत्रवतीहोय५५-५८

अन्यत् ।

लशुनं क्षीरसंयुक्तं नस्ये पाने प्रदापयेत् ॥ ५९ ॥
अश्वगन्धाकृतं चूर्णमजाक्षीरेण दापयेत् ॥
यवक्षारं विडंगं च गुडूची च रसेणुका ॥ ६० ॥
सर्वाणि समभागानि कृत्वा च वरचूर्णितान् ॥
एतत्पीत्वा लभेत्पुत्रं सा नारी नात्र संशयः ॥ ६१ ॥

अर्थ–दूधके संग लहशुनको सुंघानेमें और पीनेमें देवे, अस-गंधका चूर्ण बकरीके दूधके साथ देवे, जवाखार, बायविडंग, गिलोय, रेणुक इनसबको बराबरले चूर्ण करके पीनेसे निश्चय स्त्रीके पुत्र होता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥

अन्यत् ।

हिंगुं च शतवीरा च दाडिमं सैन्धवं तथा ॥
त्रिकटुः शतपुष्पा च नागपुष्पं शतावरी ॥ ६२ ॥
मधुकं सुमना चैव कार्षकाणि प्रदापयेत् ॥
क्षीरेण सह दातव्या नार्य्याश्च पुरुषस्य च ॥ ६३ ॥
दिनत्रयं तु भुञ्जीत शालितन्दुलदुग्धया ॥
भुक्तं तु लभते गर्भं नारीणां नात्र संशयः ॥ ६४ ॥

अर्थ–हींग, शतवीरा, अनार, सेंधानमक, सोंठ, मिरच, पीपल, सोंफ, नागकेशर, शतावरी, महुआ, चमेली, इन सबको एक२कर्ष लेके दूधके साथ तीन दिन स्त्रीपुरुष दोनोंको देवे ऊपरसे साँठीचावल और दूधका पथ्य लेवे तौ स्त्री निश्चय गर्भवती होय ॥ ६२–६४ ॥

अन्यत् ।

अर्कमूलं प्रियंगुं च कुसुम्भं नागकेशरम् ॥
बलाचातिबला छागीक्षीरं पीतं दिनत्रयम् ॥ ६५ ॥
विशोधयन्ति योनिं च ततो दद्यान्महौषधम् ॥
उत्पलं तगरं कुष्ठं यष्टी मधु सचन्दनम् ॥ ६६ ॥
अजाक्षीरेण पिष्टानि दापयेत्पञ्च वासरम् ॥
लक्ष्मणा गोपयोयुक्ता तस्यै पाने प्रदापयेत् ॥ ६७
तेन सा लभते पुत्रं लक्षणाढ्यं सुपंडितम् ॥

अर्थ–आककी जड, प्रियंगु, कसूँभा, नागकेशर, खरेटी और कंघई इन सबको बकरीके दूधके साथ तीन दिन पीवे योनिके शुद्ध होनेपर सोंठ, नीलोफर, तगर, कूठ, मुलहटी, चन्दन पीसकर बकरीके दूधके साथ पांच दिन देवे और गौके दूधके साथ लक्ष्मणा देवे तौ शुभ लक्षणोंसे युक्त और विद्वान् पुत्र होवे ॥६५–६७॥

गतरक्ते भगे शुद्धे सक्षीरा लक्ष्मणा तथा ॥ ६८ ॥
नस्ये पाने प्रदातव्या लभते सुतमङ्गना ॥
श्वेतार्कक्षुद्रणी श्वेता श्वेता च गिरिकर्णिका ॥ ६९ ॥
लक्ष्मणा वन्ध्यकर्कोटी देयं गोक्षीरसंयुतम् ॥
नस्ये पाने कृते गर्भं लभते रतिसंगमात् ॥ ७० ॥

अर्थ–जब रुधिरसे योनि शुद्ध होजाय तब दूध और लक्ष्मणा स्त्रीको नस्य और पानमें देनेसे पुत्र होता है सफेद आक, सफेद कटेरी, सफेद कनेर, लक्ष्मणा और बांझककोडीके दूधके साथ नस्य और पानमें देनेसे स्त्री गर्भवती होजावे ॥ ६८–७० ॥

अथ गर्भस्तंभनम् ।

पतन्तं स्तम्भयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका ॥
मधुच्छागीपयः पीत्वा किं वा श्वेताद्रिकर्णिका ॥ ७१ ॥
ललना शर्करा पाठा कन्दश्च मधुनान्वितः ॥
भक्षितो वारयत्येव पतंतं गर्भमंजसा ॥ ७२ ॥

अर्थ–गिरता हुआ गर्भ कुम्हारके हाथकी मिट्टी, शहद और बकरीका दूध पीनेसे रुकजाता है अथवा सफेद कनेरकी केशर, मिश्री, पाठा, कन्द और शहद पीनेसे गर्भ रुक जाता है। ७१। ७२।

समभागं सितायुक्तं शालितन्दुलचूर्णकम् ॥
उदुम्बराशिफाक्वाथे पीतं गर्भं सुरक्षति ॥ ७३ ॥

अर्थ–साँठीचावल और मिश्री समान भाग लेवै और गूलरकी जटाके क्वाथके साथ पिलानेसे गर्भ रुकता है ॥ ७३ ॥

अथ सुखप्रसवोपायः ।

मातुलुंगस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ॥
घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ ७४ ॥

तुषाम्बुपरिघृष्टेन कन्देन परिलेपयेत् ॥
लांगल्याश्चरणौ सूर्तिं क्षिप्रमाप्नोति गर्भिणी ॥ ७५ ॥

अर्थ–बिजोरेकी जड,महुआ,शहद घीके साथ पीनेसे स्त्रीके बच्चा सुखसे होजाता है,कुम्हेरनकी जड को चावलोंके पानीमें पीसकर पांवों पर लेप करनेसे बच्चा सुखपूर्वक होता है७४।७५।

अथ बालतन्त्रम् ।

बालतन्त्रं प्रवक्ष्यामि समासाद्रविणोदितम् ॥
पूजाद्रव्यं दिशो भागं मन्त्रं तद्ग्राह्यलक्षणम् ॥ ७६ ॥
प्रथमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥
मन्दा नाम्नी समाख्याता योगिनी तस्य लक्षणम्॥७७॥
द्वितीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥
सुनन्दा योगिनी नाम प्रथमं जायते ज्वरः ॥ ७८ ॥
संकोचो हस्तपादानामक्षिरोगोतिच्छर्दनम् ॥
सभयत्वं कृशत्वं च तद्ग्रस्ते इति लक्षणम् ॥ ७९ ॥
तृतीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥
पूतना योगिनी नाम गात्रभङ्गो ज्वरो रुचिः ॥ ८० ॥
प्रलापं कन्धराशोथच्छर्दिरित्यादिलक्षणम् ॥
अपराह्णे च वारुण्यां पंचरात्रं बलिं क्षिपेत् ॥ ८१ ॥
चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥
बिडाली नाम तद्ग्रस्ते चक्षुःशूलं ज्वरोऽरुचिः ॥ ८२॥
गात्रमोटनमित्यादि विवर्णेन बलिं क्षिपेत् ॥
पंचमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥ ८३ ॥
नर्तकीति समाख्याता योगिनी तस्य लक्षणम् ॥

अथ षष्ठदिने वर्षे मासे गृह्णाति बालकम् ॥ ८४ ॥
योगिनी शकुनी नाम कासश्वासोऽरुचिर्ज्वरः ॥
हस्तपादादिसंकोचश्चक्षुःपीडेति लक्षणम् ॥ ८५ ॥
पञ्चरात्रं बलिं तस्यै वारुण्यां दिशि निक्षिपेत् ॥

अर्थ–द्रावण कहके अब बालतन्त्र कहते हैं पूजाद्रव्य दिशानके भाग और तद्वाह्यमन्त्र कहते हैं प्रथम दिन, मास वर्षमें मन्दा, नाम योगिनी बालकको पकडती है दूसरे दिन, महीने, वर्षमें सुनन्दा नाम योगिनी ग्रहण करती है जिससे ज्वर हाथपांवोंमें भडकन, अक्षिरोग और वमन होता है बालक डरता है कृश होता जाता है तीसरे दिन, महीना, वषमें पूतना योगिनीके ग्रसनेसे ज्वर, अरुचि प्रलाप, सूजन और छर्दी होती है दुपहर पीछे वारुणीमें बलिदान करना उचित है, चौथे दिनमें महीना, वर्षमें बिडाली नाम योगिनीके ग्रसनेसे आंखमें दर्द ज्वर, अरुचि इत्यादि होते हैं बलि देना योग्य है ॥ पांचवें, दिन, महीना, और वर्षमें नर्तकी योगिनीके ग्रहण करनेसे पीडा होती है छठे दिन महीना वषमें शकुनी योगिनीके ग्रहण करनेसे श्वास, अरुचि, ज्वर हाथ पांवनमें भडकन, चक्षुपीडा होती है वारुणीदिशामें पांच रात्रि बलिदान करना चाहिये ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥८४॥८५॥

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे शुष्काशिवा शिशुम् ॥ ८६ ॥
गृह्णाति रोदनं कम्पो ज्वरशोपादिलक्षणम् ॥
पश्चिमायां दिशि पञ्चबलौ दत्ते शिशुः सुखी ॥ ८७ ॥
अष्टमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति जृंभका ॥
तया गृहीतमात्रस्य प्रथमं जायते ज्वरः ॥ ८८ ॥
शिरःपीडाक्षिरोगश्च चक्षुरुत्पाटचेष्टितम् ॥
दक्षिणां दिशमाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत् ॥ ८९ ॥

नवमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥
अचिन्ता योगिनी नाम गात्रभंगः शिरोक्षिरुक् ॥९० ॥
छर्दिः प्रलाप इत्यादि तद्गृहीतस्य लक्षणम् ॥
उत्तरां दिशमाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत् ॥ ९१ ॥
दशमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥
नाम्ना कापालिका ख्याता योगिनी तस्य लक्षणम् ९२
रोदनं कम्पनं छर्दिर्ज्वरो दुर्बलताक्षिरुक् ॥
पूर्वां दिशं समाश्रित्य पंचरात्रं बलिं क्षिपेत् ॥ ९३ ॥
एकादशे दिने मासे वर्षे गृह्णाति लिप्सिता ॥
गात्रकम्पोज्वरस्तीव्रस्तद्गृहीतस्य लक्षणम् ॥ ९४ ॥
भानुसंख्ये दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥
पीतली योगिनी नाम रोदनं वेदना ज्वरः ॥ ९५ ॥
निद्रा क्षीणस्वरः पीतो वमनाहारशून्यता ॥
उत्तरां दिशमाश्रित्य सप्तरात्रं बलिं क्षिपेत् ॥ ९६ ॥
कामसंख्ये दिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥
भद्रकाली ज्वरो निद्रा वामहस्तस्य कम्पनम् ॥ ९७ ॥
वेदनारुचिनिःश्वासाः कायः पीतो विचेष्टितम् ॥
पूर्वां दिशं समाश्रित्य बलिं तस्यै प्रदापयेत् ॥ ९८ ॥

अर्थ–सातवें दिन,महीने वर्ष, शुष्काशिवा बालकको ग्रहण करती है जिससे रोदन,कम्पन,ज्वर और शोष होता है पश्चिमदिशामें पांच बलि देनेसे बच्चा प्रसन्न होजाता है आठवें दिन, महीने, वर्षमें बालकको जृम्भिका योगिनी ग्रहण करती है जिससे प्रथम ज्वर होता है फिर शिरमें दर्द, आँखरोग आँखोंकी उखडनेकीसी चेष्टा होती है इसकी पीडानि-

वारणार्थ दक्षिण दिशामें बलि देना योग्य है नवमें दिन महीने, वर्षमें अचिन्ता योगिनी बालकको ग्रहण करतीहै उससे गात्रभङ्ग शिर और आँखमें दर्द, रोदन, कम्पन, छर्दि, ज्वर, दुर्बलता होती है उत्तर दिशामें पांच रात्रितक बलि देना चाहिये, दशवें दिन महीने, वर्षमें कापालिका योगिनीके ग्रहण करनेसे रोदन, कम्पन, छर्दि, दुर्बलता, अक्षि रोग होते हैं पूर्व दिशामें बलि-दान करना चाहिये, ग्यारहवें दिन महीने, वर्षमें लिप्सिका-योगिनी बालकको ग्रहण करती है गात्रमें कम्पन तीव्रज्वर ये उसके, लक्षण हैं बारहवें दिन, महीने वर्षमें पीतली योगिनी के ग्रहण करनेसे रोदन, वेदना, ज्वर, सुस्ती, झीनी बोली पीलारंग वमन, भूख न लगना ये रोग होते हैं उत्तर दिशामें सातदिनतक बलि देना चाहिये तेरहवें दिन भद्रकालीके ग्रहण करनेसे ज्वर, निद्रा, बाँये हाथका कांपना, वेदना, अरुचि, निःश्वास, पीलारंग, चेष्टाका बिगडना होता है उसकी शान्तिके वास्ते पूर्वदिशामें बलिदेना चाहिये ॥ ८६–९८ ॥

पुरंदरदिने मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥
तारा हि योगिनी नाम ज्वरः शोषोऽरुचिर्भृशम्॥९९॥
चक्षुःपीडेंगितं तस्यै पश्चिमे बलिमाहरेत ॥
पक्षे च दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ॥ १०० ॥
योगिनी शर्वरी नाम श्वासः कासोऽरुचिर्ज्वरः ॥
तद्धस्ते चिह्नमित्यादि दक्षिणस्यां बलिं क्षिपेत्॥१०१॥
विकारदिवसे मासे वर्षे गृह्णाति योगिनी ॥
कुमारी नयनोद्वेगः ज्वरशोषादिचेष्टितम् ॥ १०२ ॥
नैर्ऋतीं दिशमाश्रित्य सप्तरात्रं बलिं क्षिपेत् ॥
बालं च स्नपयेत्पश्चाच्छान्तितोयेन मंत्रवित् ॥१०३॥
नदीतीरद्वयाकृष्टमृदा देवीस्वरूपकम् ॥
कृत्वा पूजा च कर्तव्या धूपपुष्पाक्षतादिभिः ॥ १०४ ॥

वटका लड्डुकापूपा अग्रभक्तं गुडं दधि ॥
चातुर्वर्ण्यपताकाश्च प्रदीप्ताः पुष्पचन्दनम् ॥ १०५ ॥
पूजयेत्सर्वरोगाणामपराह्ने यथा बलिः ॥
सर्वत्र नामभेदेन बलिदानं प्रजायते ॥ १०६ ॥
ओंनमोभगवति अमुके देवि बालं मुञ्च बलिं गृहाण
स्वाहा; सर्वत्र बलिनिवेदने मंत्रोऽयम् ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमञ्जर्यां नवमोऽध्यायः॥९॥

अर्थ–चौदहवें दिन, मास, वर्षमें तारा योगिनी बालकको ग्रहण करती है जिससे ज्वर, शोष, अरुचि चक्षुःपीडा होती है । पश्चिमदिशामें बलि देना चाहिये पन्द्रहवें दिन, महीने, वर्षमें शर्वरी योगिनी ग्रहण करती है जिससे श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर होता है दक्षिणदिशामें बलि देना चाहिये, सोलहवें दिन महीने, वर्षमें कुमारी योगिनी ग्रहण करती है जिससे नेत्रोंका घूमना, ज्वर, शोष और विचेष्टा होती है नैर्ऋतदिशामें सात दिनतक बलि देना चाहिये पीछे मन्त्रसे बालकको स्नान करावे नदीके तीरपर मृत्तिकाकी देवी बनाकर धूप, पुष्प, अक्षतसे पूजन करे, वटका लड्डू, मालपूआ, भात, गुड़, दही भोग लगावे चार रंगोंकी पताका चढ़ावे, दीपक जलावे, पुष्प चन्दन चढावे यह सब पूजन दुपहर पीछे करे बलि चढावे नाम भेद करके बलि चढावे " ॐ नमो भगवति अमुके देवि बालं मुञ्च बलिं गृहाण स्वाहा " इस मन्त्रसे बलि चढावे ॥ ९९।१००।१०१।१०२।१०३।१०४।१०५।१०६ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमं० भाषाटीका सहितायां नवमोऽध्यायः॥९॥

अथ कालस्य विज्ञानं प्रवक्ष्यामि यथासुखम् ॥
जीवितं मरणं योगी यतो जानाति निश्चयात् ॥ १ ॥
कालग्रहस्य यस्येदं दंष्ट्रासंपुटके जगत् ॥

अद्यैव वा प्रभाते वा सोऽवश्यं भक्षयिष्यति ॥ २ ॥
रसं रसायनं योगं कालं ज्ञात्वा समाचरेत् ॥
यस्माज्ज्ञानं विना व्यर्थं तत्तस्मात्प्रोच्यतेऽधुना ॥ ३ ॥

अर्थ-अब मैं कालज्ञान कहता हूं जिससे जीवन मरणका वृत्तान्त योगीजन जान लेवैं यह सम्पूर्ण जगत् कालके डाढोंमें है आज वा कल वह अवश्य भक्षण करेगा कालको जानकर रस रसायन और योग करना चाहिये उसके ज्ञानके विना सब व्यर्थ है अतएव कालज्ञान कहा जाता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

दूतो रक्तकषायकृष्णवसनो दन्ती जरामर्दितः ॥
तैलाभ्यक्तशरीरकायुधकरो दीनाश्रुपूर्णाननः ॥
भस्माङ्गारकपालपांशुमुसलः सूर्यास्तसूर्योदये ॥
यः सूर्य्यस्वरसंस्थितो गदवतां कालाय सस्यादसौ॥४॥५॥

अर्थ-वैद्यके बुलानेको जो ऐसा मनुष्यजाय कि, जिसके वस्त्र लाल होंय, गेरुआ होंय काले ऊँचे ऊँचे दांत होंय, बुड्ढा हो, शरीरमें तेल लगाहो,हाथमें शस्त्र हो,दीन हो, आँखोंमें आँसू हों भस्म लगरही हो कपाल,पांशु और मूसल रखता हो संध्या अथवा प्रातःकाल अथवा सूर्यअस्तका समयहो जिसका सूर्य-स्वर अर्थात् वैद्यके दहने स्वरकी तरफ खड़ा होवे तो वह रोगी मरजावे ॥ ४ ॥ ५ ॥

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ॥
अकस्मादिन्द्रियोत्पत्तिः सन्निपातस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥
शरीरं शीतलं यस्य प्रकृतेर्विकृतेर्भवेत् ॥
तत्रारिष्टं समासेन व्याप्तं तत्र निबोध मे ॥ ७ ॥
दुष्टशब्देन रमते साधुशब्देन कुप्यति ॥
यश्चाकस्मान्न शृणुते तं गतायुषमादिशेत् ॥ ८ ॥

अर्थ–अकस्मात् जिस रोगीका चित्त बिगड़जाय, अकस्मात् अच्छा होजाय, अकस्मात् इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होने लगे ये सन्निपातके लक्षण हैं शरीर ठंढा होय, प्रकृति बिगड़ी हुई हो उसका वर्णन करते हैं जो बुरे शब्दसे प्रसन्न हो अच्छे शब्दसे क्रुद्ध होय जो अकस्मात् बहरा होजाय उसको मराहुआ समझलो॥६–८॥

यो वा गंधं न गृह्णाति दीपे शान्ते च मानवः ॥
दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानि च पश्यति ॥ ९॥
चन्द्रं सूर्यप्रभं पश्येत्सूर्यं वा चन्द्रवर्चसम् ॥
तडिद्वातोषितान्मेघान्निर्मले गगने चरान् ॥ १० ॥
विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलमम्बरम् ॥
यश्चानीलं मूर्त्तिमन्तमन्तरिक्षं च पश्यति ॥ ११ ॥
यस्तूष्णामिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ॥
संजातः संशयो यस्य तं वदन्ति गतायुषम् ॥ १२ ॥

अर्थ–जिसको दीपक बुझनेपर गंध न आवै दिनमें तारे देखे चन्द्रमाको सूर्यके समान सूर्यको चन्द्रमाके समान देखे निर्मल आकाशमें हवा और बिजलीके संग बादल देखे, विमान, यान और महल देखे जो अन्तरिक्षमें नीले रंगकी मूर्ति देखे जिसको गरम शीतल और शीतल गरम लगे जिसको सन्देह उत्पन्न होगया हो उसे मरा हुआ समझो ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ॥
धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥ १३ ॥
प्रदीप्तमिव लोकं च योऽवलुप्तमिवाम्भसा ॥
भूमिमष्टादशाकारां लेखाभिर्यस्तु पश्यति ॥ १४ ॥
ज्योत्स्नादर्शे हि तोयेषु छायां यश्च न पश्यति ॥
पश्यत्येकांगहीनां च वैकृतं चापि पश्यति ॥ १५ ॥

श्वकाककंकगृध्राणां प्रयातं यक्षरक्षसाम् ॥
पिशाचोरगनागानां विकृतामपि यो नरः ॥ १६ ॥
ह्रीश्रियौ यस्य नश्येतां तेज ओजः स्मृतिस्तथा ॥
अकस्माज्जृंभते यश्च स परासुरसंशयम् ॥ १७ ॥
यस्याधरोष्ठः पतति स्थितश्चोर्द्ध्वं तथोत्तरम् ॥
पाशशंका भवेद्यस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १८ ॥

अर्थ-जिसको अनेक प्रकारकी चेष्टाभाव विपरीत मालूम हो जिसको पृथ्वी धुँआँ, कुहर, वस्त्रसे ढकीहुई मालूम हो जो लोकको प्रदीप्त और पृथ्वीको जलसे ढकीहुई लेखानसे अठारह प्रकारकी देखे और जो चाँदनी दर्पण और जलसे अपना प्रति-बिंब न देखे. अंगहीन और बुरी सूरत देखे जो कुत्ते, कौवे, चील्ह, गीध, यक्ष, राक्षस, पिशाच साँप इनके भयंकर रूप देखे जिसकी लज्जा, श्री, तेज, ओज, धारणाशक्ति जाती रहै जो अकस्मात् जंभाई लेने लगे उसे मराहुआ समझो जिसका नीचेका होठ नीचेको गिरै ऊपरका होठ ऊपर रहै जिसको फांसीकीसी शंका होय उस मनुष्यका जीना कठिन है ॥ १३-१८ ॥

कुटिला स्फुटिता वापि सुप्ता यस्य च नासिका ॥
अवस्फूर्यति मग्ना वा स परासुरसंशयम् ॥ १९ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यकी नासिका टेढी होगईहो, फटीसीहो, सुन्न पडगई हो, फडकती हो अथवा बैठगई हो वह निश्चय मरजाता है ॥ १९ ॥

धारा बिन्दुसमा यस्य पतते च महीतले ॥
सप्ताहाज्जायते मृत्युः कालज्ञानेन कथ्यते ॥ २० ॥

अर्थ-मेघके पानीके समान जिसके पसीने पृथ्वीपर टपकते हैं उसकी मृत्यु सात दिवसमें होजाती है ॥ २० ॥

कर्णहीनं यदात्मानं पश्यत्यात्मा कथंचन ॥
न स जीवति लोकेऽस्मिन्कालेन कवलीकृतः ॥ २१ ॥

अर्थ–जो अपने को कर्णहीन देखै वह संसारमें नहीं जीवेगा उसे तो मरा हुआही समझो ॥ २१ ॥

रात्रौ दाहो भवेद्यस्य दिवा शीतं च जायते ॥
कफपूरितकंठस्य मृत्युश्चैव न संशयः ॥ २२ ॥

अर्थ–जिसके रात्रिमें दाह होय दिनमें शीतलता होय और कंठमें कफ भरा होय तो मृत्यु होनेमें संशय नहीं ॥ २२ ॥

चरणौ शीतलौ यस्य शीतलं नाभिमण्डलम् ॥
शिरस्तापो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २३ ॥

अर्थ–जिसके पांव शीतल होंय और नाभिके चारोंओर का मंडल शीतल होय और जिसके शिरमें ताप होय उसकी मृत्यु होनेमें सन्देह नहीं ॥ २३ ॥

हुंकारःशीतलो यस्य फूत्कारो वह्निसन्निभः ॥
सदा दाहो भवेद्यस्य तस्य मृत्युर्न संशयः ॥ २४ ॥

अर्थ–जिसकी हुंकार शीतल होय और फूंक आगके समान होय और जिसके सदा दाह होय उसकी मृत्यु होनेमें सन्देह नहीं

अरुंधतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ॥
हीनायुषो न पश्यन्ति चतुर्थं मातृमण्डलम् ॥ २५ ॥

अर्थ–जो अरुन्धती, ध्रुव, विष्णु के तीन तारे, चौथा मातृमंडल के तारोंको न देखै उसकी आयु हीन समझो ॥ २५ ॥

अरश्मिबिंबं सूर्यस्य वह्नेश्चैवांशुवर्जितम् ॥
दृष्ट्वैकादशमासांस्तु नरश्चोर्ध्वं न जीवति ॥ २६ ॥

अर्थ–जो सूर्यके मंडल को और अग्निको किरण रहित देखै वह मनुष्य ग्यारह माससे अधिक न जीवै ॥ २६ ॥

वातं मूत्रं पुरीषं यः सुवर्णं रजतं तथा ॥
प्रत्यक्षमथवा स्वप्ने दशमासं न जीवति ॥ २७ ॥

अर्थ-वात, मूत्र, विष्ठा, सुवर्ण, चांदीको जो प्रत्यक्ष अथवा स्वप्नमें देखे सो दशमहीने नहीं जीवेगा ॥ २७ ॥

क्वचित्पश्यति यो दीप्तं स्वर्णवत्काननं नरः ॥
विरूपाणि च भूतानि नवमासं न जीवति ॥ २८ ॥

अर्थ-जो मनुष्य सुवर्णके समान प्रदीप्त जंगल देखै अथवा प्राणियोंके विकराल रूप देखै वह नौ महीनेमें मरजाता है ॥

स्थूलांगोऽपि कृशः कृशोपि सहसा स्थूलत्वमालम्बते
श्यामो वा कनकप्रभो यदि भवेद्गौरोपि कृष्णच्छविः॥
धीरो धीरतयार्थधर्मनिपुणः शान्तोपकारी पुमान्
इत्येवं प्रकृते तु शान्तचलनं मास्यष्टमे मृत्युदम्॥२९॥

अर्थ-जो बहुत स्थूल मनुष्य अकस्मात् कृश होजाय और कृश मोटा होजाय, श्यामवर्ण मनुष्य गौर होजाय गौर काला होजाय और धैर्यवानकी धीरज, यथार्थ धर्मवेत्ताका धर्म, शान्त और उपकारी मनुष्यकी शान्तप्रकृति जाती रहै तो ऐसा मनुष्य आठ महीनेमें मरजाता है ॥ २९ ॥

पीडा भवेत्पाणितले च जिह्वामूलं समूलं रुधिरं च कृष्णम्॥
वृद्धिं नरः कामपि यन्न दृष्ट्वा जीवेन्मनुष्यः स हि सप्तमासान्॥

अर्थ-जिसकी हथेली और जीभकी जड़में पीडा होवे, जिस का रुधिर काला पडजाय, जिसको कोई वृद्धि न दीखै वह मनुष्य सात महीनेमें मरजाता है ॥ ३० ॥

मध्यांगुलीनां त्रितयं विरक्तं रोगं विना शुष्यति यस्य कंठः॥
मुहुर्मुहुः प्रस्रवणं च जाड्यं षष्ठे च मासे प्रलयं प्रयाति ३१॥

अर्थ-जिसकी बीचकी तीन अंगुलियोंकी रंगत फीकी पड गई हो रोगके विना जिसका कण्ठ सूखजाय वारंवार अस्रवण और जडता होय वह रोगी छठे महीने मरजायगा ॥ ३१ ॥

यस्य न स्फुरणं किंचिद्विद्यते यस्य कर्मणि ॥
सोऽवश्यं पंचमे मासि स्कंधारूढो गमिष्यति ॥ ३२ ॥

अर्थ-जिसको किसी काममें कुछ स्फुरती न होय वह पांचवें महीने अवश्य मरजायगा ॥ ३२ ॥

यस्य न स्फुरते ज्योतिः पीडिते नयनद्वये ॥
मरणं तस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-जिसकी ज्योति न फडकै जिसके दोनों नयनोंमें पीडा होवे वह मनुष्य निश्चय चौथे महीनेमें मरजाता है ॥ ३३ ॥

स्पन्दते वृषणो यस्य न किंचिदपि पीडितः ॥
तृतीये मासि सोऽवश्यं यमलोके गमिष्यति ॥ ३४ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके अण्डकोश किसी प्रकारकी पीडाके विना भडकते हों अथवा उनमें खुजली चलती हो वह मनुष्य निश्चय तीसरे महीनेमें यमलोकगामी होता है ॥ ३४ ॥

तारा दिवा चन्द्रप्रभं निशान्ते यो विद्युतं पश्यति चैव श्वभ्रे॥
इन्द्रायुधं वा स्वयमेव रात्रौ मासद्वये तस्य वदन्ति नाशम्॥

अर्थ-जिस मनुष्यको दिनमें तारे दीखैं और चन्द्रमाकीसी प्रभा दीखनेलगे, जो निर्मल आकाशमें बिजली देखें और रात में इन्द्रधनुष दीखनेलगे ऐसा मनुष्य दो महीनेमें मरजाता है ॥

यस्य जानुगतं मर्म न किंचिदपि चेष्टितम् ॥
मासान्ते मरणं तस्य न केनापि विलंब्यते ॥ ३६ ॥
कनिष्ठांगुलिपर्व स्यात्कृष्णं च मध्यमं यदा ॥
गतायुः प्रोच्यते पुंसामष्टादशादिनावधिः ॥ ३७ ॥

अर्थ-जिस मनुष्यके जानुगत मर्मको स्पर्श करनेसे कुछ चेष्टा न हो वह महीनेभरमें अवश्य मर जाता है, जिसकी कनिष्ठिका अंगुलीके बीचका पोरुआ काला पडजाय वह मनुष्य १८ दिनमें मर जाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

घृते तैले जले वापि दर्पणे यस्य दृश्यते ॥
शिरोरहितमात्मानं पक्षमेकं स जीवति ॥ ३८ ॥

अर्थ-घृत, तेल, जल अथवा दर्पणमें जो अपनी सूरत शिर विना देखे वह पन्द्रह दिनमें मर जाय ॥ ३८ ॥

शैत्यं दध्यन्नपानानि यस्य तापकराणि च॥शीतरश्मि भवेच्चारु हासं चाथ सुनिर्मलम् ॥३९॥ न वेत्ति वै चारु हितं न चोष्णं वेत्ति यो नरः॥कालज्ञानेन संप्रोक्तं पक्षमेकं सजीवति

अर्थ-शीतल पदार्थ दही अन्न इत्यादि जिसको ताप करैं जिसको चन्द्रमा और निर्मल हँसना बुरा मालूम होय जो हितकी बात और गरमी मालूम न करे वह पन्द्रह दिनमें मर जायगा।३९।४०

स्नातमात्रस्य यस्यैते त्रयः शुष्यन्ति तत्क्षणात् ॥
हृदयं हस्तपादौ च दशरात्रं स जीवति ॥ ४१ ॥

अर्थ-स्नान करनेसे जिसका हृदय, हाथ, पांव तीनों तत्क्षण सूख जायँ वह मनुष्य दश दिन जीवे ॥ ४१ ॥

नासाग्रं रसनाग्रं च चक्षुश्चैवोष्ठसंपुटम् ॥
यो न पश्येत्पुरा दृष्टं सप्तरात्रं स जीवति ॥ ४२ ॥

अर्थ-नाककी नोंक जीभकी नोंक आंख और होठ जिसको न दीखैं वह सातदिनमें मर जावे ॥ ४२ ॥

स्वरूपं परनेत्रेषु पुत्तिकां यो न पश्यति ॥
यदा हि पटुदृष्टिश्च तदा मृत्युरदूरतः ॥ ४३ ॥

अर्थ-और के नेत्रोंकी पुतलीमें अपने स्वरूपको न देखे और जिसको पहिले नहीं दीखता था फिर दीखने लगे वह शीघ्र मरेगा ४३।

इति कालविज्ञानम्।

अथ छायापुरुषलक्षणम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि छायापुरुषलक्षणम् ॥
यस्य विज्ञानमात्रेण त्रिकालज्ञो भवेन्नरः ॥ ४४ ॥
कालो दूरस्थितोस्यापि येनोपायेन लक्ष्यते ॥
तं वदन्ति समासेन यथोद्दिष्टं शिवागमे ॥ ४५ ॥
एकान्ते विजने गत्वा कृत्वादित्यं स्वपृष्ठतः ॥
संनिरीक्ष्य निजच्छायां कण्ठदेशसमाहिताम् ॥
ततश्चाकाशमीक्षेत ततः पश्यति शङ्करम् ॥ ४६ ॥

अर्थ-अब छायापुरुषके लक्षण कहताहूं जिसके विज्ञानमात्रसे मनुष्य त्रिकालका जाननेवाला होजाता है. जिस उपायसे दूरस्थ काल भी देखनेमें आताहै उसको मैं संक्षेपसे जैसा शिवागममें उद्देश है वैसा कहताहूं. निर्जन एकान्तमें जाकर सूर्यकी ओर पीठ करके खडाहोवे और अपने कंठकी छायाको देखे फिर जप करनेके पश्चात् आकाशकी ओर देखे तब शङ्करका दर्शन होवे॥४४-४६॥

"ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः"

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ततो वै दृश्यते शुभम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं नानारूपधरं हरम् ॥ ४७ ॥
षण्मासाभ्यासयोगेन भूचराणां पतिर्भवेत् ॥
वर्षद्वयेन हे नाथ कर्त्ता हर्त्ता स्वयं प्रभुः ॥ ४८ ॥
त्रिकालज्ञत्वमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ॥
यत्कृताभ्यासयोगेन नास्ति किञ्चित्सुदुर्लभम् ॥ ४९ ॥
तद्रूपं कृष्णवर्णं च पश्यति व्योम्नि निर्मले ॥
षण्मासान्मृत्युमाप्नोति स योगी नात्र संशयः ॥ ५० ॥

अर्थ--"ॐ ह्रीं परब्रह्मणे नमः" इस मंत्रको एक सौ आठवार जप करके जब आकाशकी ओर देखैगा तब शुद्ध स्फटिकके समान गौरवर्ण श्रीशङ्करका दर्शन होगा. इस प्रकार छः महीने अभ्यास करनेसे चराचर प्राणीमात्रका पति होजायगा और दो वर्षपर्य्यंत अभ्यास करनेसे वह योगी स्वयं शिवके समान कर्त्ता हर्त्ता और त्रिकालज्ञ होजाता है इस अभ्यासके योगसे उसको संसारमें कुछभी दुर्लभ नहीं रहता यदि वही रूप निर्मल आकाशमें कृष्णवर्ण दीखे तो वह योगी निस्सन्देह छः महीने में मरजाता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥

पीतो व्याधिभयं रक्तो नीलो हत्यां विनिर्दिशेत् ॥
नानावर्णे स्वरूपेस्मिन्नुद्वेगो जायते महान् ॥ ५१ ॥
पादौ गुल्फं च जठरं विनाशं कृशता भवेत् ॥
अर्द्धवर्षेण वार्षे वा जीवन्वर्षद्वयेन वा ॥ ५२ ॥
विनाशो दक्षिणे बाहौ स्वबन्धुर्म्रियते ध्रुवम् ॥
वामबाहौ तथा भार्या विनश्यति न संशयः ॥ ५३ ॥
शिरोदक्षिणबाहुभ्यां विनाशो मृत्युमादिशेत् ॥
अशिरो मासमरणं विना जंघे दिवा नव ॥ ५४ ॥
अष्टभिः स्कन्धनाशेन छायालुप्तेन तत्क्षणात् ॥५५॥

अर्थ–जो पूर्वोक्तरूप पीतवर्ण दीखै तो व्याधिका भय है, लाल और नीला हो तो हत्याका द्योतक है जो इस स्वरूप में अनेक प्रकार के वर्ण दीखें तो महान् उद्वेग होता है जो चरण, टकने और जठरका नाश होवे और कृशता होय तो छः महीने एक वर्ष अथवा दो वर्षमें मरजाता है. दाहिनी भुजाके नष्ट होने से अपने बांधवका मरण होता है. बाँई भुजाके नष्ट होनेसे स्त्रीमरण, शिर और दाहिनी भुजाके नष्ट

होनेसे मृत्युकी सूचना होती है शिररहित एक महीनेमें, विना जांघ नौ दिनमें कंधे रहित आठ दिनमें और छायाके लुप्त होनेसे तत्क्षण मरजाता है ॥ ५१--५५ ॥

तीर्थस्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन वा ॥
जपेन ज्ञानयोगेन जायते कालबन्धनम् ॥ ५६ ॥
रसायनं च पूर्वोक्तं गुटिका मृतजीवनी ॥
नरैः सेव्या यथोक्तं च परं कालस्य वंचनम् ॥ ५७ ॥
रक्षणीयमतो देहं यतो धर्मादिसाधनम् ॥
शरीरं नाशयन्त्येते दोषा धातुमलाश्रयाः ॥ ५८ ॥
वैद्यनाथतनूजेन शालिनाथेन धीमता ॥
शास्त्रमालोक्य चाकृष्य रचिता रसमञ्जरी ॥ ५९ ॥

इति श्रीशालिनाथविरचितायां रसमञ्जर्यां
दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्थ--तीर्थस्नान, दान, तप, सुकृत, जप, ज्ञानयोगसे काल का बन्धन होता है, पूर्वोक्त रसायन मृतसंजीवनी गुटिका, आदि कालके निवारणार्थ मनुष्योंको सेवन करना उचित है, धातु और मलके आश्रय भूत दोष शरीरको नष्ट कर देते हैं इससे इस शरीर की रक्षा करना उचित है क्योंकि यही शरीर धर्मका साधनेवालाहै इसी हेतुसे यह रसमंजरी वैद्यनाथके पुत्र शालिनाथ ने शास्त्रोंको देखकर और उनका सार खींचकर यह "रसमंजरी" बनाई है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

इति श्रीमथुरानिवासिकृष्णलालनिर्मितरसमंजरीभाषाटीकायांदशमोऽध्यायः १०

इति रसमंजरी भाषाटीकासहिता सम्पूर्णतामगमत् ॥

Kaikhoshru Motabhoy Contractor

परिशिष्टम्।

बहुमूत्रहरोऽर्कः।

चक्रमर्दकमूलन्तु संपिष्टं तण्डुलाम्बुना ॥
प्रभातसमये पीतस्तदर्कों बहुमूत्रहत् ॥ १ ॥

अर्थ–चकवडकी जडको चावलके पानीमें पीसकर अर्क तयार करले यह अर्क प्रातःकाल पीनेसे बहुमूत्र रोगका नाश करताहै १

गर्भकारकः।

अश्वगन्धाभवार्केण सिद्धं दुग्धं सितान्वितम् ॥
ऋतुस्नातांगना प्रातः पीत्वा गर्भं दधाति हि ॥ २ ॥

अर्थ–असगन्धके अर्कको दूधमें डालकर सिद्धकरे पीछे मिसरी डालकर ऋतुधर्मके अनन्तर स्नान करके प्रातःकाल जो स्त्री पीतीहै वह निश्चय गर्भधारण करती है ॥ २ ॥

अथ वाजीकरणम्।

स्वर्णमाक्षिकलोहञ्च पारदश्च शिलाजतु ॥
पथ्याविडंगधत्तूरविजयाजातिपत्रिका ॥ ३ ॥
अश्वगन्धागोक्षुराणामर्कैर्भाव्यं पृथक्पृथक् ॥
सप्तभागन्तु विश्वैकं मध्वाज्याभ्यां लिहेत्ततः ॥ ४ ॥
गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम्॥
गोधूमचूर्णन्तु तथा सितामधुघृतान्वितम् ॥
भुक्ताहि व्यक्तिजीर्णोऽपि दशदारान्व्रजत्यपि ॥ ५ ॥
ब्रह्मचर्यं प्रकर्तव्यमेकविंशद्दिनावधि ॥ ६ ॥

अर्थ–सोनामक्खी, लोह, पारा और शिलाजीत, हरड, वाय विडंग, धतूरा, भांग, जावित्री इनको असगन्ध और गोखरूके अर्ककी एक २ भावना देवै, इसमेंसे सातभाग सोंठ और एक भाग घी और शहदके संग चाटै ऊपरसे ऐसी गायका दूध लेवै

कि जिसका बच्चा बडा होगया हो उस दूधमें सूजी भूनकर डालदे अर्थात् खीर या महेरी बनाकर खाय इक्कीस दिवसतक ब्रह्मचर्यसे रहै तो मनुष्य कैसाही जीर्ण होगया हो दश स्त्रियोंसे भोग करसक्ता है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ।

अथ प्रदरहरः ।

सितादुग्धेन संयुक्तमाभार्कस्य पलद्वयम् ॥
घृतदुग्धाशनी नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥ ७ ॥

अर्थ--प्रदर रोगवाली स्त्री प्रातःकाल दोपल बंबूलका अर्क मिश्री मिलेहुए दूधमें डालकर पीवे घृत मिलाकर दूधका सेवन करे तो प्रदररोग नष्ट होजायगा ॥ ७ ॥

अन्यच्च ।

अशोकवल्कलार्कश्च घृतं दुग्धं च शीतलम् ॥
यथावच्च पिबेत्प्रातः स्त्रीणां प्रदरशान्तये ॥ ८ ॥

अर्थ--अशोककी छालका अर्क पीवे फिर ऊपरसे यथावत् घी और कच्चा दूध पीवै तौ प्रदररोग दूर होवे ॥ ८ ॥

अथ प्लीहहरः ।

समुद्रशक्तिजो ह्यर्कः पिप्पल्यर्कः सदुग्धकः ॥
अर्कार्को वासलवणः प्लीहरोगविनाशनः ॥ ९ ॥

अर्थ–समुद्रफेनका अर्क पीपलका अर्क दूधमें मिलाकर पीनेसे अथवा नमक डालकर आकका अर्क पीनेसे तिल्ली दूर होजातीहै ९

अथाश्मरीहरः ।

कूष्माण्डार्कौ यवक्षाराहिंगुयुक् चाश्मरीप्रणुत् ॥ १० ॥

अर्थ--कूष्मांडका अर्क, जवाखार, हींग डालकर पीनेसे पथरीरोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

इति श्रीरसमंजर्य्या भाषाटीकान्वितः परिशिष्टभागः समाप्तः ।

मुखियाजी रघुनाथजी कृष्णलालजी सरस्वती भंडार–मथुरा.
पुस्तक मिलनेका ठिकाना–खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्, प्रेस–बंबई.